दस वैज्ञानिक क्रान्तिकारी

notionpress.com

दस वैज्ञानिक क्रान्तिकारी

आपके दृष्टिकोण में विश्व के महान वैज्ञानिको के जीवन द्वारा क्रांतिकारी परिवर्तन लाने वाली अभूतपूर्व क़िताब

ऋषि आचार्य

notionpress.com

Notion Press

Old No. 38, New No. 6
McNichols Road, Chetpet
Chennai - 600 031

First Published by Notion Press 2017

ISBN 978-1-947027-00-8

विषय-सूची

दो शब्द

भारत के संविधान के अनुसार वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास प्रत्येक भारतवासी का प्रमुख कर्तव्य माना गया है। इस पुस्तक का उद्देश्य भारत की नई पीढ़ी को हमारे देश के और विश्व के उन महान वैज्ञानिकों के बारे में जानकारी देना है; जिन्होंने कठिन परिश्रम और मजबूत इरादों के बल पर दुनिया को अभावों और अज्ञानता के अंधेरों से निकाल कर एक नई दिशा दी| मैं यह आशा करता हूँ कि इन क्रान्तिकारी वैज्ञानिकों के जीवन चरित्रों को पढ़कर यह पीढ़ी नई प्रेरणाएँ प्राप्त करेगी।

इन जीवनियों को ३ वर्षों के मेरे गहन प्रयासों, पुस्तकालयों और इन्टरनेट पर उपलब्ध आधिकारिक सन्दर्भ ग्रंथों को पढ़कर लिखा गया है। प्रकाशन के पूर्व ही समस्त तिथियों, नामों और तथ्यों की यथाशक्ति जाँच कर ली गई है फिर भी अगर पुस्तक में कही कोई त्रुटि पाई जाती है तो मैं इसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ एवं सूचित किये जाने पर अगले संस्करणों में उसे सुधारने का आश्वासन देता हूँ। हिंदी भाषा में वैज्ञानिक लेखन की शुरुआत एक अच्छा संकेत है और इस क्षेत्र में श्री विपुल विनोद जी और उनके सहयोगियों द्‌वारा लिखित वैज्ञानिकों की विस्तृत जीवनियों ने मुझे विशेष प्रेरणा दी है। मैं उनके साथ साथ सभी विज्ञान-कथा लेखकों का आभारी हूँ।

भारत की नई पीढ़ी के वैज्ञानिक समाज निर्माण में आप भी सहयोग कर सकते है। इस पुस्तक को गहन रूप से पढ़े, समझे और मुख्य बिन्दुओं को नोट करे, इन महापुरुषों के जीवन से

प्रेरणा लेकर अपना जीवन भी ऊँचा उठाये। पढ़कर पुस्तक किसी अन्य जिज्ञासु को दे दें, ताकि विज्ञान का आलोक जन-जन के जीवन को प्रकाशित करता चले । एक वैज्ञानिक समाज का निर्माण होता चले। आप भी कुछ पुस्तके में बाँटे ।

जय विज्ञान - जय अनुसंधान

लेखक एवं संकलक

ऋषि आचार्य - प्रमुख

Sciencify India Programme

समर्पण

अपनी इस पुस्तक की सफलता को मैं अपने कोच, मेंटर और गुरु श्री पी.ए. ईनामदार जी को समर्पित करता हूँ; जिनका जीवन देश के नौनिहालों की निखारने का एक जीता जागता अभियान है, मेरा यह दृढ विश्वास है कि उनके जैसे १०० लोग भी हमारे देश को मिले तो भारत को विश्व शक्ति बनने से कोई रोक नहीं सकता है। पुणे शहर के उन लाखों बच्चों की और से जिनके जीवन में ईनामदार सर ने नई सबुह लायी है, मैं शिक्षण महर्षि श्री ईनामदार सर का का धन्यवाद करता हूँ और ईश्वर से उनके उत्तम स्वास्थ्य और दीर्घायुष्य की कामना करता हूँ।

इसके बाद मैं अपने पिता श्री विद्यासागर जी आचार्य का कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मेरे इस लेखन कार्य में बहुत सहयोग दिया है। उनके सतत साथ, प्रेरणा और मार्गदर्शन के बिना इस पुस्तक का इस रूप में बन पाना असंभव था।

मैं अपनी इस पुस्तक को अपने पुत्र सिद्धार्थ आचार्य के नाम करता हुआ सभी को धन्यवाद करता हूँ।

जीवनियाँ

- आचार्य जगदीश चन्द्र बसु
- सर सी. वी. रमण
- डॉ. ए. पी. जे कलाम
- डॉ.हरगोविंद खुराना
- सुब्रमण्यम चंद्रशेखर
- गैलिलियो गैलिली
- लियोनार्डो दा विन्ची
- अल्बर्ट आइंस्टीन
- आईजैक न्यूटन
- मैरी क्यूरी
- आओ करें एक वैज्ञानिक समाज का निर्माण

आचार्य जगदीश चन्द्र बसु



“आचार्य जगदीश चन्द्र बसु अपने समय से ६० साल आगे थे।”

- सर नेविले मोट्ट (इलेक्ट्रॉनिक्स में नोबेल पुरस्कार विजेता)

जन्म और बचपन

प्यारे बच्चों इस पुस्तक में आप पढेंगे भारत के उस महान वैज्ञानिक के बारे में जिसे दुनियाँ सर जगदीश चन्द्र बसु के नाम से जानती है। बसु का जन्म ३० नवम्बर १८५८ को बंगाल (अब बांग्लादेश) में ढाका जिले के फरीदपुर के मेमनसिंह गाँव में हुआ था। उनके पिता भगवान चन्द्र बसु ब्रह्म समाज के नेता थे और फरीदपुर, बर्धमान एवं अन्य जगहों पर उप-मैजिस्ट्रेट या सहायक कमिश्नर थे। बसु बचपन से ही खोजी प्रवृत्ति के बालक थे। बसु की प्रारंभिक शिक्षा अपने गाँव के ही बांग्ला विद्यालय में हुई। हालाँकि आपके समय में अंग्रेजी शिक्षा का ही बोलबाला था, लेकिन आपके पिता जी का मानना था कि व्यक्ति को दूसरी भाषा सीखने के पहले अपनी भाषा में कुशल होना चाहिए।

बसु के स्कूली मित्रो में एक मछुवारे का बच्चा भी था, उसके द्वारा बताई गई मछलियों, जलचरों और पक्षियों की बातें और किस्से, छोटे बसु को बहुत अच्छे लगते थे और धीरे धीरे ये उनका पसंदीदा विषय बन गए। इन कहानियों ने बचपन में ही बसु के मस्तिष्क में प्रकृति की संरचना पर अनुसंधान करने की गहरी रुचि जगाई।

गाँव के स्कूल से प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद बसु ने सेन्ट ज़ैवियर महाविद्यालय, कलकत्ता से स्नातक की उपाधि प्राप्त की। बाद में बसु लंदन विश्वविद्यालय में चिकित्सा की शिक्षा लेने गए, लेकिन स्वास्थ्य की समस्याओं के चलते उन्हें यह शिक्षा बीच में ही छोड़ कर भारत वापस आना पड़ा। उन्होंने फिर प्रेसिडेंसी महाविद्यालय में भौतिकी के प्राध्यापक का पद संभाला और जातिगत भेदभाव का सामना करते हुए भी बहुत से महत्वपूर्ण वैज्ञानिक प्रयोग किये।

अपने जीवनकाल में बसु बहुमुखी प्रतिभा के धनी रहे और भौतिकी, जीवभौतिकी, जीवविज्ञान, वनस्पतिविज्ञान,

बांग्ला साहित्य, बांग्ला विज्ञानकथाएँ, भौतिकी, जीवविज्ञान, वनस्पतिविज्ञान, एवं पुरातत्व के क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान दिये।

सर बसु को उनके उल्लेखनीय योगदानों के लिए देश विदेश में अनेकों सम्मान मिले जिसमे से प्रमुख सम्मान कुछ इस प्रकार है।

- उन्होंने सन् १८९६ में लंदन विश्वविद्यालय से विज्ञान में डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की
- वह सन् १९२० में रॉयल सोसायटी के फैलो चुने गए
- इंस्टिट्यूट ऑफ इलेक्ट्रिकल एण्ड इलेक्ट्रोनिक्स इंजीनियर्स ने जगदीश चन्द्र बसु को अपने 'वायरलेस हॉल ऑफ फेम' में सम्मिलित किया
- वर्ष १९०३ में ब्रिटिश सरकार ने बसु को कम्पेनियन ऑफ़ दि आर्डर आफ दि इंडियन एम्पायर (CIE) से सम्मानित किया
- वर्ष १९११ में उन्हें कम्पैनियन ऑफ़ द आर्डर ऑफ दि स्टार इंडिया (CSI) से विभूषित किया गया
- वर्ष १९१७ में ब्रिटिश सरकार ने उन्हें नाइट बैचलर की उपाधि दी

अविष्कार एवं अनुसंधान

टेलीग्राम (तार)

इन्होंने बेतार के संकेत भेजने में असाधारण प्रगति की और सबसे पहले रेडियो संदेशों को पकड़ने के लिए अर्धचालकों का प्रयोग करना शुरु किया। आगे चलकर बसु के यही मूल अनुसंधान, अत्याधुनिक संचार प्रणाली का मुख्य आधार बने।

क्रीस्कोग्राफ

श्री बसु के इस अनोखे यंत्र की सहायता से विभिन्न उत्तेजकों के प्रति पौधों की प्रतिक्रिया का अध्ययन किया जाना संभव हो सका । इस तरह से इन्होंने सिद्ध किया कि वनस्पतियों और पशुओं के ऊतकों में काफी समानता है।

रेडिओ की खोज

सन 1887-88 के आसपास प्रसिद्ध ब्रिटिश भौतिकविद ओलिवर लॉज मैक्सवेल ने तरंगों के अस्तित्व का प्रदर्शन तारो के साथ उन्हें प्रेषित करके किया। इसी में आगे चलकर १८८८ में ही जर्मनी के भौतिकशास्त्री हेनरिक हर्ट्ज़ ने मुक्त अंतरिक्ष में विद्युत चुम्बकीय तरंगों के अस्तित्व को प्रयोग करके दिखाया। इसके बाद, लॉज ने हर्ट्ज का काम जारी रखा और जून १८९४ में एक स्मरणीय व्याख्यान दिया और उसे पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया।

ओलिवर लॉज के काम ने भारत के बसु सहित विभिन्न देशों के वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित किया। बसु ने अपनी सारी श्रमशक्ति इसमें उड़ेल दी और माइक्रोवेव अनुसंधान और तरंग धैर्य के क्षेत्र में एक करिश्मा कर दिखाया। बसु के माइक्रोवेव अनुसंधान का उल्लेखनीय पहलू यह था कि उन्होंने तरंग दैर्ध्य को मिलीमीटर स्तर पर ला दिया (लगभग 5 मिमी तरंग दैर्ध्य)। वे प्रकाश के गुणों के अध्ययन के लिए लंबी तरंग दैर्ध्य की प्रकाश तरंगों के नुकसान को समझ गए।

बसु ने एक बंगाली निबंध, 'अदृश्य आलोक' में लिखा, "अदृश्य प्रकाश आसानी से ईंट की दीवारों, भवनों आदि के भीतर से जा सकता है, इसलिए तार के बिना प्रकाश के माध्यम से संदेश संचारित हो सकता है।" रूस में पोपोव ने ऐसा ही एक प्रयोग किया।

रेडियो डेवलपमेंट में स्थान

बसु ने अपने प्रयोग उस समय किये थे जब रेडियो एक संपर्क माध्यम के तौर पर विकसित हो रहा था। रेडियो माइक्रोवेव ऑप्टिक्स पर बसु ने जो काम किया था, वो रेडियो कम्युनिकेशन से जुड़ा हुआ नहीं था, लेकिन उनके द्‌वारा किये हुए सुधार एवं उनके द्‌वारा इस विषय में लिखे हुए तथ्यों ने दूसरे रेडियो आविष्कारकों को विशेष तौर पर प्रभावित किया था।

जगदीशचन्द्र बसु पहले वैज्ञानिक थे जिन्होंने रेडियो तरंगे डिटेक्ट करने के लिए सेमीकंडक्टर जंक्शन का इस्तेमाल किया था और इस पद्धति में कई माइक्रोवेव कंपोनेंट्स की खोज की थी।यह सारे उपकरण आज भी कोलकाता के बसु इंस्टिट्यूट में मौजूद हैं।असल में बसु ने ही P - टाइप और N - टाइप सेमीकंडक्टर के अस्तित्व का पूर्वानुमान किया था।

सूर्य के विद्‌युत चुम्बकीय विकिरण

बसु ने ही सूर्य से आने वाले विद्‌युतचुम्बकीय विकिरण के अस्तित्व का सुझाव दिया था जिसकी पुष्टि १९४४ में हुई। आजकल प्रचलित बहुत सारे माइक्रोवेव उपकरण जैसे वेव गाईड, ध्रुवक, परावैद्‌युत लैंस, विद्‌युतचुम्बकीय विकिरण के लिये अर्धचालक संसूचक, इन सभी उपकरणों का उन्नींसवी सदी के अंतिम दशक में बसु ने अविष्कार किया और उपयोग किया था।

वनस्पति पर अनुसंधान

बच्चों यह हमारे जगदीश चंद्र बसु ही थे जिन्होंने सबसे पहले जैवभौतिकी अर्थात (Biophysics) के क्षेत्र में यह साबित किया की पौधों में उत्तेजना का संचार वैद्‌युतिक (इलेक्ट्रिकल) माध्यम से होता हैं ना कि केमिकल माध्यम से। सारी दुनियाँ के प्रमुख वैज्ञानिकों का ध्यान बसु ने अपने इस दावे से भारत की और

आकर्षित किया, बाद में इन दावों को वैज्ञानिक प्रयोगों के माध्यम से सच साबित किया गया था।

आचार्य बसु ने सबसे पहले माइक्रोवेव के वनस्पति के टिश्यू पर होने वाले असर का अध्ययन किया था। उन्होंने पौधों पर बदलते हुए मौसम से होने वाले असर का अध्ययन किया था। इसके साथ साथ उन्होंने रासायनिक इन्हिबिटर्स (inhibitors) का पौधों पर असर और बदलते हुए तापमान से होने वाले पौधों पर असर का भी अध्ययन किया था। अलग अलग परिस्थितियों में सेल मेम्ब्रेन पोटेंशियल के बदलाव का विश्लेषण करके वे इस नतीजे पर पहुँचे कि "पौधे संवेदनशील होते हैं वे दर्द महसूस कर सकते हैं, स्नेह अनुभव कर सकते हैं इत्यादि।" बसु की यह खोजें आज तक जैवभौतिकी के विकास का आधार बनी हुई है।

देश को दिया अनुसंधान का उपहार

सन १९१७ में बसु ने कलकत्ता में बसु-विज्ञानमंदिर जिसे हम Bose Institute के नाम से भी जानते हैं की नीव रखी जिसका उद्देश्य भारत में वैज्ञानिक अनुसंधान और खोज को प्रोत्साहित करना था। आज यह भारत में विज्ञान प्रेमियों के लिए प्रेरणा का एक अद्भुत उदाहरण है। इस इंस्टिट्यूट ने अब तक हजारों अनुसंधान पत्रों को प्रकाशित किया है और विज्ञान प्रेमियों के लिए यहां पर श्री जगदीश चंद्र बसु की स्मृति में एक संग्रहालय भी स्थापित किया गया है। बसु इंस्टिट्यूट के मुख्य कार्यालय का पता है-

Main Campus

93/1, Acharya Prafulla Chandra Road

Kolkata - 700009

West Bengal, India

Phone: (+91)(-33) 2350-2402/2403/ 6619/6702

अगर आप कभी कोलकाता जाए तो इस महान वैज्ञानिक के अपने देश को दिए गए उपहार को देखना न भूले।

निधन

देश के इस महान वैज्ञानिक सपूत का निधन दिनांक २३ नवंबर १९३७ में बंगाल के गिरिडिह नगर में ७९ वर्ष की आयु में हुआ। अपने अंतिम दिनों में श्री बसु ने अपनी सारी संपत्ति और धन देश में विज्ञान की सेवा में सेवा में अर्पित कर दिया था।

प्रेरक प्रसंग

आप ईमानदार और स्वाभिमानी बने रहे और पक्षपात के खिलाफ डटकर खड़े रहे

जगदीश चंद्र बसु एक ईमानदार और स्वाभिमानी पुरुष थे, कलकत्ता के प्रेसिडेंसी कालेज में भारतीय शिक्षकों को अंग्रेज शिक्षकों के मुकाबले एक तिहाई वेतन ही मिलता था, इस पक्षपात और अन्याय का बसु ने खुलकर विरोध किया। अपने विरोध के रूप में बसु ने उस एक तिहाई वेतन को भी लेने से मना कर दिया और तीन वर्षों तक बिना वेतन ही अध्यापन करते रहे। अंग्रेज सरकार और कॉलेज प्रबन्धन भी बसु की ज़िद के सामने हैरान था | बगैर वेतन काम करने की वजह से बसु आर्थिक तंगियों से घिर गए, यहाँ तक की उन्हें अपना पुश्तैनी घर भी बेचना पड़ा, लेकिन मजबूत इरादों के धनी बसु ने हार नहीं मानी। बसु के इस अनोखे सत्याग्रह के सामने आख़िरकार सरकार को झुकना पड़ा और चौथे वर्ष उन्हें पूरा वेतन दिया गया।

आप निर्भीक बने और साहस का परिचय दिया

वैज्ञानिकों की एक सभा में जब बसु ने यह दर्शाना चाहा कि पौधों में हमारी तरह दर्द का एहसास होता है, उन्हें भी तकलीफ

होती है, अगर उन्हे काटा जाए और अगर उनमें जहर डाल दिया जाए तो वह मर भी सकते है।

इस प्रयोग के लिए जगदीश चन्द्र बसु ने सभा में लाये एक पौधे मे ज़हर का एक इंजेक्शन लगाया और कहा कि “अभी आप सभी देखेंगे कि इस पौधे की मृत्यु कैसे होती है।” जगदीश चन्द्र बसु ने प्रयोग शुरू किया, जहर का इंजेक्शन भी लगाया लेकिन पौधे पर कोई असर नही हुआ। वह परेशान जरूर हुए लेकिन अपना संयम बरतते हुए ये कहा कि अगर इस ज़हरीले इंजेक्शन का एक सजीव अर्थात इस पौधे पर कोई असर नही हुआ तो दूसरे जानदार यानि मुझ पर भी कोई बुरा प्रभाव नही पड़ेगा। जैसे ही जगदीश चन्द्र बसु खुद को इंजेक्शन लगाने लगे तो अचानक दर्शकों में से एक आदमी खड़ा हुआ और उसने कहा ‘मैं अपनी हार मानता हूँ मिस्टर जगदीश चन्द्र बसु, मैंने ही जहर की जगह एक मिलते जुलते रंग का पानी डाल दिया था। जगदीश चन्द्र बसु ने फिर से प्रयोग शुरू किया और पौधा सभी के सामने मुरझाने लगा। ऐसे निर्भीक और साहसी थे हमारे डॉ. जगदीश चन्द्र बसु।

एक लोकप्रिय शिक्षक जिसके ज्ञान पर कोई कॉपीराइट नहीं था

हालाँकि एक मित्र के बहुत आग्रह पर बसु को अपने एक प्रयोग के लिए पेटेंट लेना पड़ा पर व्यक्तिगत रूप से वे पेटेण्ट प्रणाली के घोर विरोधी थे। उनका मानना था की ज्ञान सदैव मुक्त होना चाहिये। आपने अनेक विषयों पर महत्वपूर्ण अनुसंधान किये और बेहतर प्रौद्योगिकी का आविष्कार किया लेकिन अपनी खोजों से व्यावसायिक लाभ उठाने की जगह इन्होंने इन्हें सार्वजनिक रूप से प्रकाशित कर दिया ताकि अन्य शोधकर्ता इन पर आगे काम कर सकें। अपने प्रेसिडेंसी कॉलेज के दिनों से ही बसु एक विज्ञान शिक्षक के रूप में अपने छात्रों के बीच खासे लोकप्रिय

रहे। वे कक्षा में पढ़ाने के लिए बड़े पैमाने पर वैज्ञानिक प्रदर्शनों का उपयोग करते थे। बसु के ही कुछ छात्र जैसे सत्येंद्र नाथ बसु भी आगे चलकर प्रसिद्ध भौतिकशास्त्री बने। हमारे प्रथम राष्ट्रपति डा.राजेंद्र प्रसाद भी इनके प्रिय शिष्यों मे से एक थे।

श्री बसु के प्रेरक वचन

“बचपन में अपनी मातृभाषा के स्कूल में पढ़ने की वजह से में अपनी भाषा, और उसके महान साहित्य और संस्कृती को समझ पाया और अपने विचारों को उस भाषा में सोच पाया जो मेरी अपनी भाषा थी।”

“विश्वविद्यालयों का उद्देश्य ज्ञान की उन्नति होना चाहिए जिसके लिए सत्य की खोज और ज्ञान के प्रसार को साथ साथ चलाना चाहिये, सिर्फ ज्ञान को लगातार रटने या दोहराने से छात्र नक़लची ही बने रहेंगे और सत्य का जीवंत अनुभव उनसे छूट जायेगा।”

“भारत के विशेष योगदान को माने बिना मानवीय बुद्धिमत्ता के विकास के बात अधूरी रहेगी। भारत के अतुलनीय वैज्ञानिक योगदान, भावी शोधार्थियों को हमेशा प्रेरणा देते रहेगे।”

“सच्ची मानवता का साम्राज्य भौतिक सम्पदाओं के एकत्रीकरण से नहीं बल्कि ज्ञान और आदर्शो के जनसामान्य तक सामान रूप से प्रसार से ही खड़ा होगा।”

“अगर मेरे जीवन में थोड़ी भी सफलता है तो वह मजबूत और स्थिर असफलताओं की बुनियाद पर ही खड़ी है ।”

“सबसे अच्छी प्रयोगशाला मनुष्य का मस्तिष्क है जहाँ भ्रमों से परे हम सत्य के नियमों को जान पाते है।”

“मैंने ३००० वर्ष पूर्व के पूर्वजों के संदेश को गंगा तट पर समझा है, संसार की परिवर्तनशील अनेकता में मात्र एक को देखने वाला ही सनातन सत्य का जानने वाला ही ज्ञानी होता है।”

“आविष्कार एवं निर्माण की शक्ति विज्ञान की समस्याओं से संघर्ष करने पर विकसित नहीं होती और न ही आवश्यक हैं कि वैज्ञानिक ज्ञान हेतु स्कूल से परीक्षा पास की जाए।”

“हमें पश्चिमी देशों को देखकर अपना मूल तथ्य नहीं गंवाना चाहिए।”

“देश के नए आविष्कार ही भविष्य की पूंजी हैं। मैं इसको जीवित रखने के लिए राष्ट्र की मान्यताओं को ही बल दूंगा।”

“वैज्ञानिको के शोध का लक्ष्य उनका निजी महत्व बढ़ाना नही, बल्कि मानव को संसाधनो के ज़रिए लाभ पहुँचना होना चाहिये।”

सर सी. वी. रमण



मात्र ३०० रु. से भी कम के सामान में नोबेल पुरस्कार जीतने वाले अनोखे वैज्ञानिक!

- सी वी रमण

जन्म और बचपन

सी वी रमण एशियाई मूल के पहले अश्वेत वैज्ञानिक थे, जिन्हें विज्ञान में अपनी उत्कृष्ट खोज के लिए नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ। उन्हें भारत सरकार द्वारा "भारत रत्न" द्वारा और संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा "लेनिन शांति पुरस्कार" द्वारा भी सम्मानित किया गया।

पिता चंद्रशेखर अय्यर और माता पार्वती अम्मल की दूसरी संतान के रूप में आपका जन्म ७ नवम्बर १९८८ को तमिलनाडु के तिरुचिरापल्ली गाँव में हुआ। विज्ञान में आपकी रूचि आपको अपने पिता से विरासत में मिली क्योंकि आपके पिताजी एस. पी. जी. कॉलेज में भौतिकी के प्राध्यापक थे। आपके पिता जी को पढ़ने का बहुत शौक़ था इसलिए उन्होंने अपने घर में ही एक छोटी-सी लाइब्रेरी बना रखा थी। इसी कारण रमण का विज्ञान और अंग्रेज़ी साहित्य की पुस्तकों से परिचय बहुत छोटी उम्र में ही हो गया था।

रमण प्रारंभ से ही अध्ययन में कुशल और कुशाग्र थे और मात्र १३ वर्ष की कम उम्र में ही आपने मैट्रिक की परीक्षा छात्रवृत्ति के साथ पास कर ली। अपने ख़राब स्वास्थ्य के चलते आपको देश में रहकर ही अपनी उच्चशिक्षा पूरी करनी पड़ी। आपने सन् १९०३ ई. में चेन्नई के प्रेसीडेंसी कॉलेज में प्रवेश ले लिया। यहाँ के प्राध्यापक आपकी योग्यता से इतने प्रभावित हुए कि आपको अनेक कक्षाओं में उपस्थित होने से छूट मिल गई। आप बी.ए. की परीक्षा में विश्वविद्यालय में अकेले ही प्रथम श्रेणी में आए। आप को भौतिकी में स्वर्णपदक दिया गया। आपको अंग्रेजी निबंध पर भी पुरस्कृत किया गया। आपने १९०७ में मद्रास विश्वविद्यालय से गणित में प्रथम श्रेणी में एम.ए. की डिग्री विशेष योग्यता के साथ हासिल की। आपने इस परीक्षा में इतने अंक प्राप्त किए थे, जितने पहले किसी ने नहीं किये थे। जीवन के इस दौर में आप पर श्रीमती एनीबेसेन्ट के भाषणों

का भी विशेष प्रभाव रहा और आपने भारतीय धर्मग्रंथो का भी गहराई से अध्ययन किया जिसकी वजह से आप पर प्राचीन भारतीय दर्शन की गहरी छाप पड़ी और इसी कारण जीवन भर आप एक प्रबल देशभक्त बने रहे।

सन १९०६ में रमण ने एम. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। उसके बाद उन्हें वित्त विभाग में जनरल एकाउंटेंट की नौकरी मिल गई। सरकारी नौकरी में इतना ऊंचा पद पाने वाले रमण पहले भारतीय थे। इस दौरान उनका परिचय लोकसुंदरी देवी से हुआ और उनके संगीत कौशल ने युवा रमण का मन मोह लिया। माता-पिता की सम्मति से श्री रमण, लोकसुन्दरी जी से विवाह करके कलकत्ता आ गये ।

अनुसंधान की लगन

अपनी धुन के पक्के रमण को भी कोलकाता में सहायक महालेखापाल की नौकरी मिल गयी और उन्होंने अपने अनुसंधान कार्यों को गति देने के लिए घर में ही एक छोटी-सी प्रयोगशाला बनाई। जो कुछ भी उन्हें दिलचस्प लगता उसके वैज्ञानिक तथ्यों के अनुसंधान में वह लग जाते। कोलकाता में उन्होंने 'इण्डियन एसोसिएशन फॉर कल्टिवेशन ऑफ साइंस' के प्रयोगशाला में अपना अनुसंधान जारी रखा। हर सुबह वो दफ्तर जाने से पहले परिषद की प्रयोगशाला में पहुँच जाते और दफ्तर के बाद शाम पाँच बजे फिर प्रयोगशाला पहुँच जाते और रात दस बजे तक वहाँ काम करते। वो रविवार को भी सारा दिन प्रयोगशाला में गुजारते और अपने प्रयोगों में व्यस्त रहते।

वाद्‌यंत्र-भौतिकी के महारथी

१९१७ तक रमण के अनुसंधान का मूल कार्य लगातार चलता रहा लेकिन संगीत में भी आपकी विशेष रूचि होने की वजह से आपने अपने बचे हुए समय में ध्वनि के कंपन और कार्यों का सिद्धांत पर भी अनेकों प्रयोग किये । आपके इसी गहन अध्ययन के

परिणामस्वरुप सन् १९२७ ई. में जर्मनी में प्रकाशित बीस खण्डों वाले भौतिकी विश्वकोश के आठवें खण्ड के लिए वाद्‌ययंत्रों की भौतिकी का लेख आपसे तैयार करवाया गया। सम्पूर्ण भौतिकी कोष में आप ही ऐसे लेखक हैं जो जर्मन नहीं है।

विदेश में

वेंकटरमण ब्रिटेन के प्रतिष्ठित कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी की 'एम. आर. सी. लेबोरेट्रीज़ ऑफ़ मॉलिक्युलर बायोलोजी' के स्ट्रकचरल स्टडीज़ विभाग के प्रमुख वैज्ञानिक थे। रमण के जीवन में एक नया मोड़ तब आया जब उन्हें सन १९२१ में इंग्लैंड में हो रही यूनिवर्सिटीज़ कांग्रेस में भाग लेने हेतु निमंत्रण आया। अपनी समुद्री यात्रा के दौरान विशाल समुद्र और ऊपर का अनंत आकाश रमण के लिए अध्ययन का नया विषय बनते जा रहे थे। भूमध्य सागर के नीलेपन ने रमण को बहुत आकर्षित किया। वह सोचने लगे कि सागर और आकाश का रंग ऐसा नीला क्यों है? नीलेपन का क्या कारण है? प्रकृति पर ही प्रश्न करके उसके उत्तर खोजने की रमण की यह पुरानी आदत थी।

सवालो से निकली "रमण-प्रभाव" और नोबेल पुरस्कार की कहानी

अपने सवालों के लेकर रमण गहन अनुसंधान में लग गए। लॉर्ड रेले ने आकाश के नीलेपन का कारण हवा में पाये जाने वाले नाइट्रोजन और ऑक्सीजन के अणुओं द्‌वारा सूर्य के प्रकाश की किरणों का छितराना माना है। लॉर्ड रेले ने यह कहा था कि सागर का नीलापन मात्र आकाश का प्रतिबिम्ब है। लेकिन भूमध्य सागर के नीलेपन को देखकर उन्हें लॉर्ड रेले के स्पष्टीकरण से संतोष नहीं हुआ। जहाज़ के डेक पर खड़े-खड़े ही उन्होंने इस नीलेपन के कारण की खोज का निश्चय किया।

बच्चों सफलता किसी चिराग के जिन्न को रगड़कर नहीं मिलती उसके लिए तो कड़ी मेहनत और सच्ची लगन का होना जरूरी है, श्री रमण ने भी अपना सुख चैन छोड़कर कलकत्ता विश्वविद्यालय में पार्थिव वस्तुओं में प्रकाश के बिखरने का नियमित अध्ययन शुरु कर दिया। लगभग सात वर्षों की तपस्या के बाद, आप अपनी उस खोज पर पहुँचें, जो 'रमण प्रभाव' के नाम से विख्यात है। 'रमण इफ़ेक्ट' की खोज २८ फरवरी १९२८ को हुई। रमण ने इसकी घोषणा अगले ही दिन विदेशी प्रेस में कर दी। प्रतिष्ठित वैज्ञानिक पत्रिका 'नेचर' ने उसे प्रकाशित किया। उन्होंने १६ मार्च, १९२८ को अपनी नयी खोज के ऊपर बैंगलोर स्थित साउथ इंडियन साइन्स एसोसिएशन में भाषण दिया। इसके बाद धीरे-धीरे विश्व की सभी प्रयोगशालाओं में 'रमण इफेक्ट' पर अन्वेषण होने लगा।

बच्चों, आज ज़्यादा से ज़्यादा क्षेत्रों में जैसे रसायन उद्योग, प्रदूषण की समस्या, दवाई उद्योग, प्राणी शास्त्र के अध्ययन में छोटी मात्रा में पाये जाने वाले रसायनों का पता लगाने के लिए रमण इफेक्ट का इस्तेमाल हो रहा है। रमण इफेक्ट आज उन चीज़ों के बारे में सूचना दे रहा है जिसके बारे में रमण ने इसकी खोज के समय कभी सोचा भी नहीं था।

श्री रमण को उनके पूर्व में किये अनुसंधानों की वजह से रॉयल सोसायटी ऑफ लन्दन में फैलो का पद दिया गया और अंततः 'रमण प्रभाव' के लिए आपको सन् १९३० ई. मे नोबेल पुरस्कार दिया गया। विश्व के इस सबसे बड़े पुरस्कार को पाने वाले भारत ही नहीं पूरे एशिया महाद्वीप के आप पहले व्यक्ति बने।

रमण प्रभाव की खोज बनी "राष्ट्रीय विज्ञान दिवस"

अपने अनुसंधानों से भारत का नाम सारे विश्व के विज्ञान-जगत में अमर कर देने वाले इस वैज्ञानिक की महान खोज

को ऐतिहासिक बनाने के लिए भारत सरकार ने २८ फरवरी को "राष्ट्रीय विज्ञान दिवस" के रूप में मनाने की घोषणा की।

राष्ट्रीय विज्ञान दिवस का मूल उद्देश्य शिक्षा, तकनीक और विज्ञान जगत के माध्यम से देश भर में विज्ञान के अध्ययन और अनुसंधान को बढ़ावा देना एवं विशेष अनुसंधानकर्ताओं को पुरस्कार देना है। राष्ट्रीय विज्ञान दिवस देश में विज्ञान की निरंतर उन्नति का आह्वान करता है।

विज्ञान को समर्पित जीवन

१९४८ में सेवानिवृति के बाद सर सी वी रमण ने बंगलुरु में रामन् शोध संस्थान स्थापना की और इसी संस्थान में शोधरत रहे।इसके लिए उन्होंने कोई भी सरकारी सहायता नहीं ली। १९५४ ई. में भारत सरकार द्वारा भारत रत्न की उपाधि से विभूषित किया गया। आपको १९५७ में लेनिन शान्ति पुरस्कार भी प्रदान किया था।

विज्ञान को समर्पित देश के इस महान सपूत ने ८२ वर्ष की उम्र में २१ नवम्बर १९७० को बंगलुरु में इस दुनिया से विदा ली।

अपने युवा वैज्ञानिकों के सामने यह आदर्श रखने के लिए कि विदेशी डिग्रियों और सम्मानों के पीछे नहीं भागना चाहिए, रमण ने स्वयं लन्दन की 'रॉयल सोसाइटी' की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। उन्हें इस बात से बहुत घृणा थी कि लोग राजनीति के द्वारा विज्ञान का शोषण करें।

श्री सी वी रमण के कुछ प्रेरक वचन

"जब मैंने नोबेल पुरस्कार जीता वह क्षण मेरी और मेरी साथियों की सात साल की कड़ी मेहनत का परिणाम था और व्यक्तिगत रूप से बहुत गर्व का मौका था। लेकिन जब पुरस्कार समारोह में, मेरे चारों और विदेशी गोरो का विशाल समुद्र था और उनके

बीच भारतीय पगड़ी और कोट पहने मैं बैठा था, उस समय मुझे लगा की यहाँ मैं एक व्यक्ति के रूप में नहीं बल्कि एक विशाल देश और उसके देशवासियों के प्रतिनिधी के रूप में बैठा हूँ।"

"मीडिया का ज़्यादा ध्यान वैज्ञानिकों के काम पर तब जाता है जब उन्हें पश्चिम में बड़े सम्मान या पुरस्कार मिलने लगते हैं। ये तरीक़ा ग़लत है, बल्कि होना ये चाहिए कि हम अपने यहाँ काम कर रहे वैज्ञानिकों, उनके काम को जानें और उसके बारे में लोगों को बताएँ। उन्होंने कहा कि भारत में कई वैज्ञानिक अच्छे काम कर रहे हैं, मीडिया को चाहिए कि उनसे मिले और उनके काम को सराहे, साथ ही लोगों तक भी पहुँचाए।"

"विज्ञान के इतिहास में, हम अक्सर देखते हैं कि कुछ प्राकृतिक घटना के अध्ययन ज्ञान की एक नई शाखा के विकास में प्रारंभिक बिंदु रहे है।"

"विज्ञान हमारे चारों ओर है और हमें उसका पता लगाना है। विज्ञान केवल प्रयोगशाला तक सीमित नहीं है। मैं बच्चों को कहूँगा की तारों, फूलों और आसपास घटती घटनाओं को देखों और उनके बारे में सवाल पूछो। अपनी बुद्धि और विज्ञान की सहायता से उत्तरों की खोज करो।"

"मेरा मानना है कि मौलिक विज्ञान, आदेश-अनुदेश, उद्योगों और सरकार या सेना के दबाव से नहीं चलाया जा सकता है।"

"आपके सामने पड़े काम को पूरे समर्पण और लगन से पूरा करने पर ही आपको सफलता मिल सकती है।"

"सही प्रश्न पूछें, और प्रकृति उसके रहस्य के लिए दरवाजे आपके समक्ष खोल देगी।"

"आप हमेशा इस बात का चुनाव नहीं कर सकते की आपके जीवन में कौन आएगा, परंतु वो जो सबक आपको सिखाते है वे अवश्य सीख सकते है।"

“अगर कोई आपका आकलन कर रहा है तो वह अपने दिमाग को व्यर्थ खर्च कर रहा है, पर मज़े की बात यह है कि यह उसकी अपनी समस्या है।”

“मैं अपनी असफलताओं का मालिक हूँ। अगर मैं कहीं असफल ही नहीं होऊँगा तो कभी सीखूँगा भी कैसे?”

“मैं बगैर किसी विरोधाभास के यह दावा कर सकता हूँ कि भारतीय मन की गुणवत्ता किसी भी ट्यूटनिक, नॉर्डिक, या एंग्लो-सैक्सन मन की गुणवत्ता के बराबर है।”

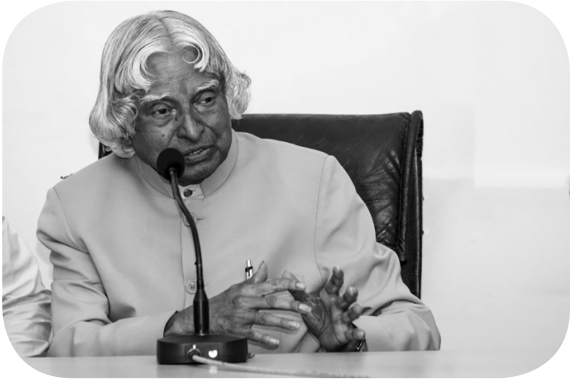
“मुझे लगता है कि हमारे देश को जिस चीज़ की सबसे ज़्यादा ज़रूरत है वह है हमारे अंदर आ चुकी हीनभावना के विनाश की।”

“मुझे लगता है कि अगर भारत की महिलाओं ने विज्ञान में अपनी रूचि और खोज बढ़ायी तो वे, वह सब कुछ कर सकती है, जो पुरुष अब तक करने में असफल रहे।”

“समर्पण की शक्ति - महिलाओं की एक महान गुणवत्ता है। यह विज्ञान के क्षेत्र में सफलता के लिए सबसे महत्वपूर्ण गुणों में से एक है।”

उनके सम्मान में महान वैज्ञानिक श्री अल्बर्ट आइंस्टीन ने कहा था - “श्री सी. वी. रमण की खोजों ने हम सभी पर अपनी गहरी छाप छोड़ी है”

डॉ. ए. पी. जे कलाम



वैज्ञानिक और सशक्त भारत के महान स्वप्नदर्शी और शिल्पकार

- ऐ. पी. जे. अब्दुल कलाम।

बचपन

भारत के मिसाईल मेन और एक वैज्ञानिक और सशक्त भारत के शिल्पकार अबुल पकिर जैनुलाअबदीन अब्दुल कलाम या डॉक्टर ए॰ पी॰ जे॰ अब्दुल कलाम का जीवन और योगदान कागज़ के कुछ पन्नों में समेटना असंभव है। भारत के इस महान वैज्ञानिक सपूत का जन्म १५ अक्टूबर १९३१ को धनुषकोडी गाँव (रामेश्वरम, तमिलनाडु) में एक मध्यमवर्गीय मुस्लिम परिवार में हुआ। इस गाँव में वे अपने संयुक्त परिवार के साथ रहते थे | उनके परिवार की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी | उनके पिता जैनुलाअबदीन मछुआरों को नाव किराए पर देते थे तथा उनकी माता ‘अशिअम्मा’ एक गृहिणी थीं| नन्हे कलाम के जीवन पर इनके पिता का बहुत प्रभाव रहा। वे भले ही पढ़े-लिखे नहीं थे, लेकिन उनकी लगन और उनके दिये संस्कार अब्दुल कलाम के बहुत काम आए।

बचपन में कलाम का जीवन अनेक आर्थिक समस्याओं से घिरा हुआ था, आठ भाई-बहनों के परिवार में किसी बड़ी स्कूल में जाकर पढ़ाई करना उनके लिए असंभव था इसीलिए कलाम साहब ने अपनी शिक्षा का आरंभ रामेश्वरम के एक प्राथमिक विद्यालय से किया | आर्थिक कठिनाइयाँ पढ़ाई के बीच रूकावट न बने इसलिए छोटे कलाम ने अपनी पढ़ाई पूरी करने तथा घर की आर्थिक सहायता हेतु अख़बार बेचने का कार्य आरम्भ किया|

उम्र के इसी पड़ाव पर जब कलाम महज़ पांच साल के थे उनके स्कूल शिक्षक इयादुराई सोलोमन ने उनसे कहा था कि अगर तुम अपने जीवन मे सफलता प्राप्त करना चाहते तो इसके लिए तुम्हे तीव्र इच्छा, आस्था और अपेक्षा इन तीन गुणों को अच्छी तरह समझना और अपने जीवन में उतारना होगा। नन्हे कलाम ने अपने गुरु की इन बातों को हृदय में अच्छी तरह बसा लिया और अपने जीवन को इन बातों के हिसाब से ढालते चले गए।

स्कूल के बाद

अपनी स्कूल की पढ़ाई पूरी करने बाद कलाम ने तिरूचिरापल्ली के सेंट जोसेफ कॉलेज में दाखिला लिया, जहाँ से उन्होंने सन १९५४ में भौतिक विज्ञान में स्नातक किया। उसके बाद वर्ष १९५५ में वो मद्रास(चेन्नई) चले गए जहाँ से उन्होंने एयरोस्पेस इंजीनियरिंग की शिक्षा ग्रहण की। वर्ष १९६० में कलाम ने मद्रास इंस्टिट्यूट ऑफ़ टेक्नोलॉजी से इंजीनियरिंग की पढ़ाई पूरी की। इन दिनों युवा कलाम का सपना था कि वह भारतीय वायु सेना में फाइटर प्लेन के चालक यानि पायलट (Pilot) बन सकें, परन्तु यह पूर्ण न हो पाया, पर फिर भी उन्होंने हार नहीं मानी | किसे पता था की आगे चलकर यही युवक आकाश और सघन अन्तरिक्ष में भारत की अनेकों विशाल परियोजनाओं का नेतृत्व करेगा।

DRDO और विक्रम साराभाई के सम्पर्क में

हालाँकि कलाम ने जीवन के इन प्रारंभिक वर्षों में भारतीय रक्षा अनुसंधान एवं विकास संस्थान (DRDO) में रहकर हावरक्राफ्ट परियोजना पर काम किया लेकिन यहाँ कलाम बहुत समय तक नहीं रुके। कलाम पंडित जवाहर लाल नेहरु द्वारा गठित 'इंडियन नेशनल कमेटी फॉर स्पेस रिसर्च' के सदस्य भी थे। इसी दौरान उन्हें प्रसिद्ध अंतरिक्ष वैज्ञानिक विक्रम साराभाई के साथ कार्य करने का अवसर मिला।

कलाम डॉ विक्रम साराभाई के द्वारा चुने हुए उन कुछ युवा वैज्ञानिकों में से एक थे जिन्हें डॉ. साराभाई ने रॉकेट सबंधित तकनीक का विशेष अध्ययन करने के लिए "नेशनल एयरोनॉटिक्स स्पेस एजेंसी" अमेरीका भेजा गया था । १९६२ में भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (ISRO) में प्रवेश किया, इसरो में कार्य करते हुए कलाम ने "थुम्भा" गाँव में समुद्र के किनारे पशुओं के एक दड़बे को ही अपनी प्रयोगशाला

में बदल दिया और रॉकेट प्रक्षेपण पर काम करने का निश्चय किया।

परिस्थितियाँ चाहे कैसी भी हो उन्हें कोसने और हिम्मत हारने की जगह सकारात्मक सोच के धनी कलाम ने कड़ी मेहनत और लगन के बल पर इसरो (ISRO) में कई परियोजनाओं का सफलतापूर्वक संचालन किया, जिनमें से सबसे महत्वपूर्ण था उनके द्वारा भारत के पहले उपग्रह "पृथ्वी" जिसे SLV3 भी कहा जा सकता है, को पृथ्वी की कक्षा के निकट स्थापित किया जाना|

भारत अंतरिक्ष में

जिस देश को हज़ारों सालों की गुलामी से आज़ाद होकर कुछ ही साल बीते थे, वही देश, कलाम और उनके साथियों की मेहनत की वजह से अंतर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष क्लब का सदस्य बना। कलाम की इस उपलब्धि से सारा देश एक नए आत्मविश्वास से भर गया।

अग्नि की उड़ान

अपनी धुन के पक्के कलाम के लिए ये तो बस एक शुरुआत थी, १९८९ में कलाम ने वो कर दिखाया जिस पर सारे विश्व की निगाहें भारत के सामरिक प्रभुत्व पर टिक गयी। डॉ कलाम और उनके वैज्ञानिक दल ने ७०० से १२५० किमी तक मध्यम दुरी तक मार करने वाले अत्यंत शक्तिशाली बैलिस्टिक प्रक्षेपास्त्र का निर्माण कर सबको चोंका दिया। इस प्रक्षेपास्त्र को नाम दिया गया "अग्नि", आज इसी अग्नि प्रक्षेपास्त्र के पाँच अत्याधुनिक मॉडल बन चुके है जिनकी अंतरमहाद्विपीय मारक क्षमता के आगे भारत के दुश्मनों के हौसले पस्त हो जाते है। इस प्रक्षेपास्त्र की ताकत का अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि अकेला यह प्रक्षेपास्त्र १५ किलोटन से २५० किलोटन गोला - बारूद, ज्वलनशील वायु विस्फोटक और सामरिक परमाणु अस्त्रो को ले जाने में सक्षम है।

आगे का सफर।

डॉ कलाम की परियोजनाओं की विशेषता थी अग्नि एवं पृथ्वी जैसी मिसाइलों के उत्पादन में स्वदेशी तकनीक का उपयोग। भारत की अन्तरिक्षीय एव सामरिक परियोजनाओँ में आत्मनिर्भरता के युग का प्रारंभ हो चुका था। १९८२ में डॉक्टर कलाम को डीआरडीओ का निदेशक नियुक्त किया गया। उसी समय अन्ना विश्वविद्यालय, मद्रास ने इन्हें 'डॉक्टर आफ साइंस' की मानद उपाधि से सम्मानित किया।

१९९२ जुलाई से दिसंबर १९९९ तक वे रक्षामंत्री के विज्ञान सलाहकार और सुरक्षा शोध और विकास विभाग के सचिव थे।

परमाणु की गूँज

भारत ने सन् १८ मई, १९७४ में पोखरण में पहला परमाणु परीक्षण किया। दूसरा परमाणु परीक्षण सन् १९९८ में पोखरन में ही हुआ। उस समय भारत सरकार ने घोषणा की थी कि भारत का परमाणु कार्यक्रम शांतिपूर्ण कार्यो के लिये होगा और यह परीक्षण भारत को ऊर्जा के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाने के लिये किया गया है। बाद में ११ और १३ मई, १९९८ को पाँच और भूमिगत परमाणु परीक्षण किये और भारत ने स्वयं को परमाणु शक्ति संपन्न देश घोषित कर दिया। उनकी देखरेख में भारत ने १९९८ में पोखरण में अपना दूसरा सफल परमाणु परीक्षण किया और परमाणु शक्ति से संपन्न राष्ट्रों की सूची में शामिल हुआ।

स्टेंट की उपलब्धि

हृदय रोगों में की जाने वाली बाईपास सर्जरी में कोरोनरी धमनी में बैठाए जाने वाले स्टेंट मुख्यतः विदेशो से ही आते थे जिसकी अधिक क़ीमत की वज़ह से इसे लगा पाना निर्धनों के लिए बहुत मुश्किल था। यहाँ कलाम ने एक बार फ़िर अपनी

वैज्ञानिक प्रतिभा का परिचय दिया और वर्ष १९९८ में उन्होंने हृदय चिकित्सक सोमा राजू के साथ मिलकर एक कम कीमत का 'कोरोनरी स्टेंट' का विकास किया। इसे 'कलाम-राजू स्टेंट' का नाम दिया गया।

राष्ट्रपति भवन का सफ़र

कलाम भारतीय जन-मन के सच्चे हीरो थे, देशवासी भारत के इस वैज्ञानिक शिल्पकार को अत्यंत आदर और सम्मान के साथ देखते थे। इसी लोकप्रियता की कारण ८ जुलाई २००२ को डॉक्टर कलाम को नब्बे प्रतिशत बहुमत द्वारा भारत का राष्ट्रपति चुना गया था और इन्हें २५ जुलाई २००२ को संसद भवन के अशोक कक्ष में राष्ट्रपति पद की शपथ दिलाई गई। इस तरह डॉ. अब्दुल कलाम भारत गणराज्य के ११ वें राष्ट्रपति बने। राष्ट्रपति पद पर रहते हुए भी कलाम ने देशभर के बच्चों से संपर्क बनाये रखा, अपने कार्यकाल में वे देश के लाखों बच्चों के बीच जाकर भारत २०२० का सपना और उसकी योजना बच्चों को बताते रहे।

डॉ. कलाम भारत को अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में दुनिया का सिरमौर राष्ट्र बनते देखना चाहते थे और इसके लिए इनके पास एक कार्य योजना भी थी। भारत विश्व की अगवानी सूचना प्रौद्योगिकी के साथ साथ कृषि, व्यापार, चिकित्सा, शिक्षा और अध्यात्म जैसे प्रमुख क्षेत्रों में करे इसके लिए जीवनभर उन्होंने अथक प्रयास किये और भारत की समग्र उन्नति का खाका तैयार किया।

राष्ट्रपति कार्यकाल के बाद

राष्ट्रपति के अपने कार्यकाल के बाद डॉ कलाम एक बार फिर अपने शिक्षा और युवाओं को प्रेरणा देने के क्षेत्र में सक्रिय हो गए। उन्होंने अपने जीवन-काल में "इग्नाईटेड माइंडस: अनलीशिंग द पावर विदीन इंडिया, इंडिया- माय-ड्रीम और

एनविजनिंग अन एमपावर्ड नेशन: टेक्नालजी फार सोसॉयटल ट्रांसफारमेशन" जैसी प्रेरणादायी पुस्तकों का लेखन किया।

डॉ कलाम की आत्मकथा "द विंग्स ऑफ फायर (अग्नि की उड़ान)" के रूप में सबके समक्ष आयी और जिसने भी उसे पढ़ा वह इस महान व्यक्ति के जीवन से प्रभावित हुए बिना न रह सका।

अंतिम समय

इस महान वैज्ञानिक की मृत्यु २७ जुलाई २०१५ को शिलांग में दिल का गंभीर दौरा पड़ने की वज़ह से हो गयी। भारत का यह सच्चा सपूत उस समय भी भारतीय प्रबंधन संस्थान में विद्‌यार्थीयों के बीच व्याख्यान ही दे रहा था। उनके जीवन के साथ साथ उनकी मृत्यु भी अंतिम समय तक कार्य करते रहने का एक शाश्वत उदाहरण बन गई।

डॉ कलाम के कुछ प्रेरक वचन

- "सपने वे नहीं होते जिन्हें आप सोते हुए देखते हैं, सपने वे होते हैं जो खुली आखों से देखे जाते हैं, और जिनके लिए रातों की नींद कुर्बान की जाती है|"
- "जीवन में कठिनाइयाँ हमे बर्बाद करने नहीं आती है, बल्कि यह हमारी छुपी हुई सामर्थ्य और शक्तियों को बाहर निकलने में हमारी मदद करती है, कठिनाइयों को यह जान लेने दो कि आप उनसे भी ज्यादा कठिन हो।"
- "एक मूर्ख जीनियस बन सकता है यदि वो समझता है कि वो मूर्ख है लेकिन एक जीनियस मूर्ख बन सकता है यदि वो समझता है की वो जीनियस है।"
- "प्रश्न पूछना, विधार्थियों की सभी प्रमुख विशेषताओ में से एक है। इसलिए छात्रों सवाल पूछो।"

- “आइये अपने वर्तमान की कुर्बानी दें, ताकि हमारे बच्चों का भविष्य बेहतर हो सके |”
- “युद्ध, किसी भी किसी समस्या का स्थाई हल नहीं होता |”
- “मेरा यह सन्देश विशेष रूप से युवाओ के लिए है।उनमें अलग सोच रखने का साहस, नए रास्तों पर चलने का साहस, आविष्कार करने का साहस होना चाहिए। उन्हें समस्याओ से लड़ना और उनसे जीतना आना चाहिए। ये सभी महान गुण है और युवाओ को इन गुणों को अपनाना चाहिए।”
- हर सुबह पाँच बाते अपने आप से बोलो
    - मैं सबसे अच्छा हूँ।
    - मैं यह कर सकता हूँ।
    - भगवान हमेशा मेरे साथ है।
    - मैं एक विजेता हूँ।
    - आज का दिन, मेरा दिन है।
- “किसी भी धर्म में उस धर्म को बनाए रखने और बढ़ाने के लिए दूसरों को मारना नहीं बताया गया।”
- “शिक्षक को छात्रों में रचनात्मकता, जानने की भावना और नैतिक नेतृत्व की क्षमता का निर्माण कर उनका आदर्श बन जाना चाहिए।”

डॉ कलाम के कुछ प्रेरक प्रसंग

समधर्मी

डॉक्टर कलाम अपने व्यक्तिगत जीवन में पूरी तरह अनुशासन का पालन करने वालों में से थे। ऐसा कहा जाता है कि वे क़ुरान और भगवद्गीता दोनों का अध्ययन करते थे। वे अपने संदेशो

में अक्सर दक्षिण भारत के महान संत तिरुवल्लुर के श्लोकों को कहते थे।

विनम्र

IIT (BHU), वाराणसी के दीक्षांत समारोह में डॉ कलाम मुख्य अतिथि थे। जब वे मंच पर पहुँचे तो देखा कि उनके लिए जो कुर्सी लगी है वो बाकी कुर्सियों से बड़ी है। उन्होंने तुरंत उस पर बैठने से मना कर दिया और कुलपति को उस पर बैठने का आग्रह किया। जब कुलपति भी नहीं बैठे तो समान ऊँचाई की एक कुर्सी मंगाई गयी और तब सब लोग बैठ पाए।

उदार

राष्टपति कलाम ने अपने जीवन भर की बचत और वेतन, एक संस्था PURA (जिसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी सुविधाएँ उपलब्ध कराना है) को दे दिया।डॉ कलाम ने डॉ वर्गीज कुरियन (अमूल के संस्थापक) को फोन किया और यह पूछा कि अब मैं इस देश का राष्ट्रपति हूँ और भारत सरकार, मेरे जीवित रहने तक, मेरा ख्याल रखेगी, इसलिए मैं इस बचत और वेतन का क्या करूँगा?

सभी का ध्यान

जब डॉ कलाम DRDO में थे तो किसी बिल्डिंग की सुरक्षा के लिए उसकी बाहरी दीवारों के उपर काँच के टुकड़े लगाने का सुझाव आया। पर उन्होंने इसे ये कहते हुए मना कर दिया कि ऐसा करने से पक्षी जब दीवार पर बैठेंगे तो उन्हें चोट पहुँच सकती है।

कड़े श्रम के प्रशंसक

मुख्य अतिथि के रूप में एक कॉलेज के समारोह में भाग लेने के लिए जाने वाले ए पी जे ने एक बार रात में देर से समारोह

स्थल पर जाकर घटना की आयोजन समिति के छात्रों को हैरान कर दिया। उन्होंने कहा की वे इतनी रात आकर असल में मेहनती लोगों से मिलना चाहते थे. वे एक खुली जीप में बिना किसी सुरक्षा के साथ आये थे और उन्होंने आयोजकों से काफी बातें कीं।

डॉ. हरगोविंद खुराना



जैव तकनीक क्रान्ति के पुरोधा और महान चिकित्साविद

- डॉ. हरगोविंद खुराना

विश्व के वैज्ञानिक इतिहास में जैव कोशिकाओं में छुपे रहस्यों और उनके अनुवांशिक गुणधर्मो का पता लगाने वाले इस भारतीय मूल के वैज्ञानिक का जन्म ९ जनवरी १९२२ को सयुंक्त भारत के रायपुर कस्बे जिला मुल्तान, पंजाब में हुआ था। इनके माता-पिता के चार पुत्रों में यह सबसे छोटे थे। १०० परिवारों के उस छोटे से गाँव में एक उनका परिवार ही आंशिक रूप से पढ़ा-लिखा था।

बचपन से ही हरगोविंद मेधावी छात्र थे । उन्होंने अपनी स्कूल पढ़ाई DAV हाईस्कूल मुलतान (अब पाकिस्तान में) से की और उसके बाद लाहौर स्थित पंजाब विश्वविद्यालय से B.Sc. तथा M.Sc. की उच्च शिक्षा पूर्ण की। अपनी लगन और मेहनत के बल पर डॉ. खुराना को हमेशा छात्रवृत्तियाँ मिलती रही।

विश्वविद्यालय की पढ़ाई पूरी करने के बाद उन्हें तत्कालीन भारत सरकार की तरफ से विदेश अध्ययन के लिए भी छात्रवृत्ति मिली। यहाँ इंग्लैंड के लिवरपूल विश्वविद्यालय से इन्होंने डाक्टरैट की उपाधि प्राप्त की। इन्हें फिर भारत सरकार से शोधवृत्ति मिलीं और ये ज़्यूरिख़ (स्वीट्ज़रलैंड) के फेडरल इंस्टिटयूट ऑफ टेक्नॉलोजी में प्रोफेसर वी. प्रेलॉग के साथ अन्वेषण में प्रवृत्त हुए। इस समय प्रोफेसर प्रेलॉग के साथ बिताये समय ने उनके विचारो और दर्शन को गहनरूप से विज्ञान के प्रति प्रेरित किया।

भारत में वापस आकर डाक्टर खुराना को अपने योग्य कोई काम न मिला। आख़िरकार आप हार कर इंग्लैंड चले गए, जहाँ आपको सन १९५० में कैंब्रिज विश्वविद्यालय में सदस्यता तथा लार्ड टाड के साथ कार्य करने का अवसर मिला | सन् १९५२ में आप वैंकूवर (कैनाडा) की ब्रिटिश कोलंबिया अनुसंधान परिषद् के जैवरसायन विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हुए। सन् १९६० में इन्होंने संयुक्त राज्य अमेरीका के विस्कान्सिन विश्वविद्यालय के इंस्टिट्यूट ऑफ एन्ज़ाइम रिसर्च में प्रोफेसर का पद पाया

और फिर इसी संस्था के निदेशक रहे। यहाँ उन्होंने अमरीकी नागरिकता स्वीकार कर ली।

गहन अनुसंधान

१९५२ में कोलम्बिया विश्वविद्यालय में रहकर उन्होंने आनुवाँशिकी के क्षेत्र में शोध कार्य प्रारंभ किया और धीरे-धीरे उनके शोधपत्र अन्तर्राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं और शोध जर्नलों में प्रकाशित होने लगे। वैज्ञानिक जगत में डॉ खुराना के शोधपत्र खासे लोकप्रिय और चर्चित रहते थे जिसके कारण उन्हें अनेक सम्मान और पुरस्कार भी प्राप्त हुए।

अपने गहन अनुसंधान के दिनों में श्री खुराना जीवकोशिकाओं के नाभिकों की रासायनिक संरचना के अध्ययन में लगे रहे। नाभिकों के नाभिकीय अम्लों के संबंध में खोज दीर्घकाल से हो रही है, पर डाक्टर खुराना की विशेष पद्धतियों से वह संभव हुआ। इनके अध्ययन का विषय न्यूक्लिऔटिड नामक उपसमुच्चयों की अत्यंत जटिल, मूल, रासायनिक संरचनाएँ हैं। डाक्टर खुराना इन समुच्चयों का योग कर महत्व के दो वर्गों के न्यूक्लिप्रोटिड एन्जाइम नामक यौगिकों को बनाने में सफल हुये।

नाभिकीय अम्लों पर अपने पाया कि यह अम्ल सहस्रों एकल-न्यूक्लिऔटिडों से बनते हैं। जैव कोशिकाओं के आनुवंशिकीय गुण इन्हीं जटिल बहु न्यूक्लिऔटिडों की संरचना पर निर्भर रहते हैं। डॉ॰ खुराना ग्यारह न्यूक्लिऔटिडों का योग करने में सफल हो गए थे तथा इसके बाद वे ज्ञात श्रृंखलाबद्ध न्यूक्लिऔटिडों वाले न्यूक्लीक अम्ल का प्रयोगशाला में संश्लेषण करने में सफल हुये। इस सफलता से ऐमिनो अम्लों की संरचना तथा आनुवंशिकीय गुणों का संबंध समझना संभव हो गया | अब वैज्ञानिक, अनुवांशिकीय रोगों का कारण और उनको दूर करने का उपाय ढूँढने में सफल हो सकते थे।

डॉ खुराना १९७० में MIT विश्वविद्यालय से जुड़े और २००७ में सेवानिवृत्त हुए। अपने इस कार्यकाल में उनकी प्रयोगशाला का मुख्य केंद्र अधिकतर रूप से जैविक झिल्लियों और बायोइनरजेटिक्स एवं bacteriorhodopsin द्वारा बैंगनी झिल्ली में प्रकाश पारगमन में प्रोटॉन परिवहन की व्यवस्था को स्पष्ट करना था। उनका सबसे अद्यतन शोध, स्तनधारी दृश्य संवेदी प्रणाली और जी-प्रोटीन-युग्मित रिसेप्टर्स में था। उनका दृष्टिकोण जैव रसायन, आनुवंशिकी, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान और कोशिका रचना जैसी बहुआयामी विधाओं को जोड़कर देखना था।

नोबेल पुरस्कार

डॉ खुराना ने जीन इंजीनियरिंग (बायो टेक्नोलॉजी) विषय की बुनियाद रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जेनेटिक कोड की भाषा समझने और उसकी प्रोटीन संश्लेषण में भूमिका प्रतिपादित करने के लिए सन १९६८ में डॉ खुराना को चिकित्सा विज्ञान का नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया। डॉ हरगोविंद खुराना नोबेल पुरस्कार पाने वाले भारतीय मूल के तीसरे व्यक्ति थे। यह पुरस्कार उन्हें दो और अमेरिकी वैज्ञानिकों डॉ. राबर्ट होले और डॉ. मार्शल निरेनबर्ग के साथ सम्मिलित रूप से प्रदान किया गया था। इन तीनों ने डी.एन.ए. अणु की संरचना को स्पष्ट किया था और यह भी बताया था कि डी.एन.ए. प्रोटीन्स का संश्लेषण किस प्रकार करता है।

नोबेल पुरस्कार के वक्तव्य में उन्होंने कहा की उनकी सफलता वास्तव में एक सामूहिक प्रयास (टीम वर्क) का और बड़ी संख्या में लोगो के वैज्ञानिक विषयों को स्वीकार कर उन पर मेहनत करने का परिणाम है।

नोबेल पुरस्कार के बाद अमेरिका ने उन्हें 'नेशनल एकेडमी ऑफ़ साइंस' की सदस्यता प्रदान की (यह सम्मान केवल

विशिष्ट अमेरिकी वैज्ञानिकों को ही दिया जाता है)। डॉक्टर खुराना ने अमेरिका में अध्ययन, अध्यापन और अनुसंधान कार्य जारी रखा और देश-विदेश के तमाम छात्रों ने उनके सानिंध्य में डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की।चिकित्सा के क्षेत्र डॉ खुराना के कार्यों को सम्मान देने के लिए विस्कोसिंन मेडिसन यूनिवर्सिटी, भारत सरकार और इंडो-यूएस सांइस एंड टेक्नोलॉजी फोरम ने संयुक्त रूप से सन २००७ में 'खुराना प्रोग्राम' प्रारंभ किया।

सम्मान एवं पुरस्कार

सन १९६० में उन्हें 'प्रोफेसर इंस्टीट्युट ऑफ पब्लिक सर्विस' कनाडा में स्वर्ण पदक से सम्मानित किया गया और उन्हें 'मर्क एवार्ड' से भी सम्मानित किया गया। इसके पश्चात् सन् १९६० में डॉ खुराना अमेरिका के विस्कान्सिन विश्वविद्यालय के इंस्टिट्यूट ऑफ एन्ज़ाइम रिसर्च में प्रोफेसर पद पर नियुक्त हुए। सन १९६६ में उन्होंने अमेरीकी नागरिकता ग्रहण कर ली।

सन १९७० में डॉ खुराना मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (एम.आई.टी.) में रसायन और जीव विज्ञान के प्रोफेसर नियुक्त हुए। तब से लेकर वर्ष २००७ वे इस संस्थान से जुड़े रहे और बहुत ख्याति अर्जित की।

खुराना - कार्यक्रम

डा खुराना को १९७८ में रॉयल सोसाइटी का सदस्य भी मनोनित किया गया। भारत और अमेरिकी सरकार ने २००७ में विज्ञान और तकनीक को संयुक्त रूप से प्रोत्साहित करने के लिए खुराना कार्यक्रम की स्थापना की । यह प्रोग्राम मुख्य रूप से इन उद्देश्यों पर केंद्रित था १. स्नातक और परास्नातक स्तर के विद्यार्थियों को विशेषज्ञता स्तर के शोध का लाभ २. ग्रामीण उन्नयन, खाद्यान्न एवं जनता-शासन के बीच में पारस्परिक प्रतिभागिता बढ़ाना है।

अंतिम समय

डॉ खुराना ने ९ नवम्बर २०११ को कॉन्कर्ड, मेसाचुसेट्स में ८९ वर्ष की आयु में अपनी जीवन यात्रा पूर्ण की। विज्ञान जगत में किये उनके अद्वितीय योगदान के लिए विश्व मानवता उनकी सदैव ऋणी रहेगी ।

डॉ खुराना के कुछ प्रेरक वचन

- "जो कुछ भी मनुष्यों या सजीवों के द्वारा किया जाता है वह मुख्य रूप से उनके प्रोटीन अणुओं द्वारा किया जाता है। और इसी वजह से अनुवांशिक गुणसूत्रों (geans) में वही बातें पायी जाती है जो उन प्रोटीन अणुओं में होती है।"
- "विज्ञान जगत के कार्य और सफलता अधिक से अधिक रूप में एक दूसरे पर निर्भर होते जा रहे है और अनुवांशिक गुणसूत्रों के कार्य के सम्बन्ध में भी यही बात पूर्णतः सत्य है।"
- "हमें अपने लक्ष्य और उदेश्य को छोड़कर बाकि सभी में साधारण(सरल) होना चाहिए- ओट्टो लुई" - यह सन्देश उनके पसंदीदा वाक्यों में से एक था जो कि बहुत हद तक उनके जीवन-दर्शन से मेल भी खाता था।

डॉ खुराना के जीवन के कुछ महान तथ्य

श्री रॉबर्ट डी. वेल्स ने डॉ. खुराना के प्रति अपनी आदरांजलि देते हुए कहा था की -

"डॉ खुराना ने १५० से अधिक परास्नातकों और कई छात्रों को स्नातक प्रशिक्षित किया। इन वैज्ञानिकों में से कई अब शिक्षा में, और जैव प्रौद्योगिकी उद्योगों, में सरकारी सेवाएँ दे रहे है । खुराना का कार्य वैज्ञानिक साहित्य के लिए एक विलक्षण योगदान था।"

"उनका शोध-साहित्य स्वयं में एक संगठित और स्पष्ट अध्ययन का उदाहरण है। उन्होंने हमेशा इस बात पर बल दिया की हमारा उद्देश्य श्रोताओं तक सही रूप में जानकारी प्रदान करना है न कि उन्हें प्रभावित करने की कोशिश करना।"

डॉ खुराना अपने बचपन की याद करते हुए अपने सहकर्मियों को बताते थे कि किस तरह उनकी प्रारंभिक शिक्षा स्कूल के नाम पर, पेड़ के नीचे बैठकर हुई। वे बड़ी ख़ुशी से अपने बचपन का एक किस्सा बताते थे, जब उनके पिताजी ने उनके जन्मदिन पर उन्हें एक पेन्सिल उपहार में दी और फिर उसे तोड़कर दो हिस्से बनाते हुए कहा - "एक बार में पहले आधी का ही उपयोग ठीक से करना सीखो"।

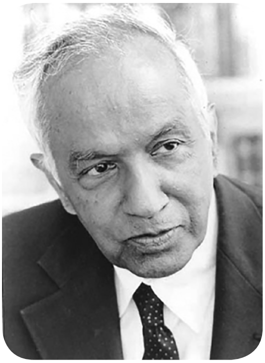
अत्यंत विनम्र और एकाग्र

श्री रॉबर्ट डी. वेल्स ने लिखा है कि - "मैं अब तक जितने वैज्ञानिकों को जानता हूँ - डॉ हरगोविंद खुराना, उन सब में सर्वाधिक समर्पित, उत्साही, एकाग्र, विनम्र और परिश्रमी इंसान है। वे हमेशा अपने छात्रों और सहकर्मियों के प्रति पूरी तरह से ईमानदार, चितंक और सभी को साथ लेकर चलने वाले मनुष्य थे।"

वैज्ञानिक साहस के धनी

श्री वेल्स आगे कहते है - "हालाँकि वह स्वभाव से शांत थे परन्तु अपने वैज्ञानिक आदर्शों और लक्ष्य के मामले में वे अत्यंत आग्रही भी थे। मैंने डॉ खुराना को कई बार उन समस्याओ के ख़िलाफ़ जंग छेड़ते हुए देखा है जो मेरे हिसाब से उनके अध्ययन (ज्ञान) के बाहर की भी होती थी। लेकिन उनके पास अद्भुत वैज्ञानिक साहस था, जो अपने आप में एक विलक्षण योग्यता है। उनकी स्वयं से और अपने सहकर्मियों से बड़ी उम्मीदें थी।"

सुब्रह्मण्यम चन्द्रशेखर



तारों की संरचना और आयु की खोज करने वाले महान वैज्ञानिक

- सुब्रह्मण्यम चन्द्रशेखर

कभी-कभी विश्व के इतिहास में कुछ ऐसे महापुरुषों का जन्म होता है जो अपने जीवन में विश्व को कुछ ऐसी उपलब्धियाँ दे जाते हैं जिनका ऋण यह विश्व कभी नहीं उतार सकता। ऐसी ही एक कालजयी शख्सियत थे डॉक्टर सुब्रह्मण्यम चंद्रशेखर।

प्रारंभिक जीवन और शिक्षा

पाकिस्तान के लाहौर में १९ अक्टूबर १९१० को एक ऐसी शख्सियत का जन्म हुआ जिसने अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में अपने सिद्धांतों के बल पर सारे विश्व को चमत्कृत कर दिया। वे थे भारत के महान वैज्ञानिक सर सुब्रह्मण्यम चंद्रशेखर।

चंद्रशेखर का बाल्यजीवन चेन्नई में बीता उनके पिता श्री सुब्रमण्यम अय्यर सरकारी सेवा में लेखा परीक्षा विभाग में अधिकारी थे। चंद्रशेखर महान भारतीय वैज्ञानिक सर सी. वी. रमण के भतीजे थे, जिनके साथ और वैज्ञानिक होने का चंद्रशेखर पर बहुत प्रभाव पड़ा। चंद्रशेखर की माता सीता बालकृष्णन एक पढ़ी-लिखी एवं उच्च कोटि की विदुषी महिला थी। छोटे चंद्रशेखर ने १२ साल की उम्र तक अपनी शिक्षा माता-पिता और निजी ट्यूटर की देखरेख में ही पूरी की और उसके बाद १९२२-२५ के वर्षों में हिंदू हाईस्कूल में दाखिला लिया। वर्ष १९२५-३० में उन्होंने 'मद्रास प्रेसिडेंसी कॉलेज' में प्रवेश लिया, जहाँ पहले दो वर्ष उन्होंने भौतिकी, केमिस्ट्री, अंग्रेज़ी और संस्कृत का अध्ययन किया।

आकाश में जगमगाते तारे और उनकी रचनाओं ने बचपन से ही चंद्रशेखर को अपनी और आकर्षित किया था। वह बचपन में लगातार घंटो तक लगातार आकाश को निहारा करते और तारों की संरचना कैसे हुई होगी इन प्रश्नों पर सोच विचार करते रहते। चंद्रशेखर ने वर्ष १९३० में भौतिकी विषय में स्नातक की परीक्षा में उत्तीर्ण की। जुलाई १९३० में उन्हें भारत सरकार

की ओर से कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय, इंग्लैंड, में पढ़ाई के लिए छात्रवृत्ति मिली।

युवावस्था और शोधकार्य।

१८ वर्ष की आयु में चंद्रशेखर का पहला शोध पत्र `इंडियन जर्नल ऑफ फिजिक्स' में प्रकाशित हुआ।मद्रास के प्रेसीडेंसी कॉलेज से स्नातक की उपाधि लेने तक उनके कई शोध पत्र प्रकाशित हो चुके थे। उनमें से एक `प्रोसीडिंग्स ऑफ द रॉयल सोसाइटी' में प्रकाशित हुआ था, जो इतनी कम उम्र वाले व्यक्ति के लिए गौरव की बात थी।जिसका शीर्षक था–'क्रॉम्पटन स्कैटरिंग एन्ड द न्यू स्टेटिस्टिक'।

चंद्रशेखर प्रारंभ से ही एक कुशाग्र बुद्धि के स्वामी थे और विदेश में भी अपने अध्ययन के बल पर वे अपने शिक्षकों के प्रिय बने रहे उन्होंने वर्ष १९३५ में अपनी पी.एचडी. को पूरा किया और इसके बाद उन्हें फेलोशिप के लिए ट्रिनिटी कॉलेज द्वारा चुन लिया गया। १९३६ में जब वह हार्वर्ड विश्वविद्यालय के दौरे पर गए थे तब एक रिसर्च एसोसिएट के पद के लिए शिकागो विश्वविद्यालय द्वारा उनसे अनुरोध किया गया जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया।

सितम्बर १९३६ में सुब्रमण्यनम चंद्रशेखर ने लोमिता दोरईस्वामी से शादी कर ली जो मद्रास के प्रेसीडेंसी कॉलेज में उनकी जूनियर थीं।

चंद्रशेखर, रमण के भतीजे थे। रमण की उपलब्धियों से उन्हें बहुत प्रेरणा मिली थी। इससे चंद्रशेखर का आत्मविश्वास आसमान की बुलंदियों पर पहुँच गया था। वे अनुसंधान कार्यों में लगे रहे। प्रोफेसर डिराक और प्रोफेसर राल्फ जैसे चोटी के वैज्ञानिकों की देखरेख में चंद्रशेखर ने शोध कार्य किया।अपने प्रारंभिक ६ वर्षों को छोड़कर शेष जीवन वे 'शिकागो विश्वविद्यालय' में एक महान शिक्षक और प्रखर विज्ञानवेत्ता के तरह कार्य करते रहे।

शिकागो विश्वविद्यालय में कार्य करना चंद्रशेखर का एक बहुत पुराना स्वप्न था, जिसके साकार होने पर वे उसके साथ अपने जीवन के अंतिम दिनों तक जुड़े रहे।

गहन अनुसंधान और नोबेल पुरस्कार

२४ वर्ष की अल्पायु में सन् १९३४ में ही उन्होंने तारे के गिरने और लुप्त होने की अपनी वैज्ञानिक जिज्ञासा सुलझा ली थी। कुछ ही समय बाद यानी ११ जनवरी १९३५ को लंदन की रॉयल एस्ट्रोनॉमिकल सोसाइटी की एक बैठक में उन्होंने अपना मौलिक शोध पत्र भी प्रस्तुत कर दिया कि सफेद बौने तारे यानी व्हाइट ड्वार्फ तारे एक निश्चित द्रव्यमान यानी डेफिनेट मास प्राप्त करने के बाद अपने भार में और वृद्धि नहीं कर सकते। अंतत: वे ब्लैकहोल बन जाते हैं।

उन्होंने बताया कि जिन तारों का द्रव्यमान आज सूर्य से १.४ गुना होगा, वे अंतत सिकुड़ कर बहुत भारी हो जाएंगे। ऑक्सफोर्ड में उनके गुरु सर आर्थर एडिंगटन ने उनके इस शोध को प्रथम दृष्टि में स्वीकार नहीं किया और उनकी खिल्ली उड़ाई। लेकिन वे हार मानने वाले नहीं थे। वे पुन: अनुसंधान में जुट गए और आखिरकार, इस दिशा में विश्व भर में किए जा रहे शोधों के फलस्वरूप उनकी खोज के ठीक पचास साल बाद १९८३ में उनके सिद्धांत को मान्यता मिली। परिणामत: भौतिकी के क्षेत्र में वर्ष १९८३ का नोबेल पुरस्कार उन्हें तथा डॉ॰ विलियम फाऊलर को संयुक्त रूप से प्रदान किया गया।

८ दिसंबर १९८३ को नोबेल पुरस्कार समारोह में डॉ चंद्रशेखर ने अपना प्रसिद्ध भाषण “ON STARS, THEIR EVOLUTION AND THEIR STABILITY” के शीर्षक से दिया। अपने इस शानदार भाषण को समाप्त करते हुए उन्होंने कहा कि इस अनुसंधान ने मुझे इस प्राचीन आदर्श पर विश्वास दिला दिया

है कि - "सरलता, सत्य की पहचान है और सुंदरता, सत्य की चमक है"।

१० दिसंबर १९८३ के अपने "भोज-भाषण" में उन्होंने कहा की - "हो सकता है कि यह सम्मान उन्हें एक तरह से उत्साहित करे, जो लोग मुझे चाहते है, और विज्ञान के प्रति उनकी लगन को मजबूत करें।" इस भाषण में उन्होंने गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर की रचना गीतांजलि की वो पंक्तियाँ सुनाई जो उन्हें बचपन से प्रेरणा देती रही है।

वे इस प्रकार है -

"जहाँ चित्त भय से शून्य हो
जहाँ हम गर्व से माथा ऊंचा करके चल सकें
जहाँ ज्ञान मुक्त हो
जहाँ दिन रात विशाल वसुधा को खंडों में विभाजित कर
छोटे और छोटे आंगन न बनाए जाते हों
जहाँ हर वाक्य ह्रदय की गहराई से निकलता हो
जहाँ हर दिशा में कर्म के अजस्त्र नदी के स्रोत फूटते हों
और निरंतर अबाधित बहते हों
जहाँ विचारों की सरिता
तुच्छ आचारों की मरू भूमि में न खोती हो
जहाँ पुरूषार्थ सौ - सौ टुकड़ों में बंटा हुआ न हो
जहाँ पर सभी कर्म, भावनाएं, आनंदानुभुतियाँ तुम्हारे अनुगत हों
हे पिता, अपने हाथों से निर्दयता पूर्ण प्रहार कर
उसी स्वातंत्र्य स्वर्ग में इस सोते हुए भारत को जगाओ।"

२७ वर्ष की आयु में ही चंद्रशेखर की खगोल भौतिकीविद के रूप में अच्छी धाक जम चुकी थी। उनकी खोजों से न्यूट्रॉन

तारे और ब्लैक होल के अस्तित्व की धारणा कायम हुई जिसे समकालीन खगोल विज्ञान की 'रीढ़ प्रस्थापना' माना जाता है।

उनके अपने शब्दों में 'मेरे जीवन में सात काल आये और वे संक्षिप्त रूप से हैं-

1. तारकीय ढांचा, सफ़ेद बौनों के सिद्धांत सहित (१९२९-३९)
2. तारकीय गतिक, ब्राउमीन संचलनों के सिद्धांत सहित (१९३८)
3. विकिरणी अन्तरण का सिद्धांत, प्रदीप्ति और सौर प्रकाशित आकाश के ध्रुवण का सिद्धांत, गृहीय और तारकीय वातावरण के सिद्धांत और हाइड्रोजन के नकारात्मक आयन का परिमाण सिद्धांत
4. हाइड्रो-गतिक और हाइड्रो-चुंबकीय स्थिरता (१९५२-६१)
5. साम्यावस्था की दीर्घवृत्तजीय आकृतियों का संतुलन और स्थायित्व। (१९६१-६८)
6. सापेक्षता और आपेक्षिकीय खगोल-भौतिकी के सामान्य सिद्धांत (१९६२-७१)
7. काले गड्ढों का गणितीय सिद्धांत (१९७४)'

जब "चंद्रशेखर सीमा" के आगे झुका सारा विश्व

जब चंद्रशेखर ने खगोल विज्ञान के क्षेत्र में कदम रखे तब विज्ञान के संसाधन इतने उन्नत नहीं थे जितने कि आज है पर इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी चंद्रशेखर को उनके अनुसंधान और परिश्रम से कोई हिला न सका। अन्ततः चंद्रशेखर ने खोज निकाला कि सभी श्वेत वामन तारों का द्रव्यमान उनके द्वारा निर्धारित सीमा में ही सीमित रहता है। उनकी यह खोज पूर्णतः गणितीय खगोल गणनाओं और भौतिकी की समीकरणों द्वारा

सत्यापित भी हो रही रही थी। अपनी इस सीमा-खोज को उन्होंने "चंद्रशेखर-सीमा" याने "चंद्रशेखर-लिमिट" का नाम दिया। और आज भी खगोल विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए चंद्रशेखर सीमा का अध्ययन एक बड़ा महत्वपूर्ण विषय है।

डॉ कलाम भी थे प्रशंसक

भारत के पूर्व राष्ट्रपति और महान वैज्ञानिक डॉक्टर कलाम ने अपनी पुस्तक "विंग्स ऑफ फायर" में श्री चंद्रशेखर के वैज्ञानिक योगदान की प्रशंसा की और बताया कि किस तरह विज्ञान का यह सपूत सम्मान और पुरस्कारों की परवाह किए बिना ही अपने शोध और अनुसंधान में लगा रहा जबकि "चंद्रशेखर सीमा" की खोज के ३० साल बाद उन्हें नोबेल पुरस्कार मिला। वे भारत के पाँचवे नोबेल पुरस्कार विजेता हैं।

सतत अनुसंधान

चंद्रशेखर लिमिट की खोज के अलावा - थ्योरी ऑफ़ ब्राउनियन मोशन (१९३८-१९४३); थ्योरी ऑफ़ द इल्लुमिनेशन एंड द पोलाराइजेशन ऑफ़ द सनलिट स्काई (१९४३-१९५०); सापेक्षता और आपेक्षिकीय खगोल भौतिकी (१९६२-१९७१) के सामान्य सिद्धांत और ब्लैकहोल के गणितीय सिद्धांत (१९७४-१९८३) भी भी चंद्रशेखर द्वारा किये गए प्रमुख अनुसंधान कार्यों में शामिल है।

रोटेटिंग प्लूइड मास और आकाश के नीलेपन पर किया गया उनका रिसर्च काफी प्रसिद्ध है। अपने शोध के आरंभिक दिनों में उन्होंने बैलिस्टिक मिसाइलों पर अहम् कार्य किया। बाद में, उन्होंने क्वांटम भौतिकी और सापेक्षता के सिद्धांत पर भी कार्य किया। अमेरिकी अंतरिक्ष एजेंसी 'नासा' ने अपनी महत्वपूर्ण वेधशाला का नाम उनके सम्मान में 'चंद्रा एक्स रे' रखा।

पुरस्कार और सम्मान

चंद्रशेखर सुब्रमण्यम ने अपने जीवन में सदैव विज्ञान की तपस्या की और अपने मित्रों और शिष्यों को अपने जीवन के उदाहरण द्वारा यह समझाया कि दुर्लभ उपलब्धियाँ कड़ी मेहनत और लगन के बल पर अवश्य प्राप्त की जा सकती है। सरल स्वभाव के धनी डॉक्टर चंद्रशेखर अपने कार्यों के बदले में पुरस्कार और सम्मान की कोई आशा नहीं रखते थे। फिर भी विज्ञान और समाज के प्रति किए गए उनके महान योगदानों को देख कर कई संस्थाओं ने उन्हें सम्मानित और पुरस्कृत किया। डॉक्टर चंद्रशेखर को मिले कुछ महत्वपूर्ण पुरस्कार एवं सम्मान इस प्रकार हैं।

पुरस्कार और सम्मान समय रेखा में

- १९४४: रॉयल सोसाइटी के फेलो बने
- १९४९: हेनरी नोर्रिस रुस्सेल लेक्चररशिप
- १९५२: ब्रूस पदक
- १९५३: रॉयल एस्ट्रोनॉमिकल सोसायटी के स्वर्ण पदक से सम्मानित
- १९५७: अमेरिकन अकादमी ऑफ़ आर्ट्स एंड साइंसेज के रमफोर्ड पुरस्कार से सम्मानित
- १९६६: राष्ट्रीय विज्ञान पदक, संयुक्त राज्य अमेरिका
- १९६८: भारत सरकार द्वारा पद्म विभूषण से सम्मानित
- १९७१: नेशनल एकेडमी ऑफ साइंसेज द्वारा हेनरी ड्रेपर मेडल
- १९८३: भौतिक विज्ञान में नोबेल पुरस्कार
- १९८४: रॉयल सोसाइटी का कोप्ले मेडल
- १९८८: इंटरनेशनल अकादमी ऑफ़ साइंस के मानद फेलो

- १९८९: गॉर्डन जे लैंग पुरस्कार
- हम्बोल्ट पुरस्कार

अलविदा

बीसवीं सदी के विश्व-विख्यात वैज्ञानिक तथा महान खगोल वैज्ञानिक डॉ॰ सुब्रह्मण्यम् चंद्रशेखर का २२ अगस्त १९९५ को ८४ वर्ष की आयु में दिल का दौरा पड़ने से शिकागो में निधन हो गया। आज डॉ चन्द्रशेखर हमारे बीच नहीं है, लेकिन उनके कार्य और विज्ञान के प्रति उनका गहन समर्पण हम सभी को ऊर्जान्वित करता रहेगा। अगर हमारे देश का कोई भी बच्चा खगोल विज्ञान में अपना अध्ययन करेगा तो उसे डॉ चंद्रशेखर द्वारा लिखे हुए ग्रन्थ और अनुसंधान पत्र हमेशा राह दिखाते रहेंगे।

प्रेरक वचन

"ईश्वर, मानव का सबसे महान आविष्कार है।"

"आश्चर्यजनक रूप में मैंने जब भी कोई नया तथ्य या सिद्धांत ढूँढा तो मुझे वह मेरी व्यक्तिगत खोज कभी नहीं लगा, बल्कि वह तो हमेशा से वहाँ था ही, केवल उसे दिखाने का मुझे मौका मिला।"

"मुझे विज्ञान की समाज के लिए उपयोगिता के बारे में पता है और यह भी की समाज विज्ञान के लाभों को अवश्य लेगा।"

"कोई प्रश्न पूछ सकता है कि किस हद तक सुंदरता के लिए खोज और विज्ञान की खोज में एक उद्देश्य है? यह वास्तव में एक अविश्वसनीय तथ्य है, जो कुछ अमूर्त है वह वास्तव में सुन्दर भी है।"

"विज्ञान हमारे आसपास की दुनियाँ की एक अनुभूति है। विज्ञान एक जगह है, जहाँ आप प्रकृति को पाते है, वह आपको प्रसन्न करता है।"

"मेरे विद्यार्थी, ऐसे विद्यार्थी है जिनके साथ मैंने निकट से काम किया है, वे एक प्रकार से श्रद्धालु है जो पुराने जमाने की याद दिलाते है जिन्हें हम पुस्तकों में पढ़ते हैं। इसके साथ ही जो मैं कहता हूँ उससे वे बिल्कुल भयभीत नहीं होते। उनकी प्रतिक्रिया सकारात्मक होगी या नकारात्मक, वे चर्चा करते हैं और तर्क वितर्क भी करते हैं। जो आप कहते हैं यदि कोई व्यक्ति उससे पूरी तरह सहमत होता है तो विचार - विमर्श का कोई बिन्दु नहीं होता।"

"विज्ञान की खोज की तुलना कई बार ऊँचे पर्वतों के आरोहण के साथ की गई है। लेकिन हममें से कौन आशा, या कल्पना ही, कर सकता है कि असीम तक फैले एवरेस्ट पर चढ़ाई करे और उसके शीर्ष पर पहुँचे जब कि आकाश नीला हो और हवा रूकी हुई हो और हवा की स्तब्धता में बर्फ के सफेद चमकीलेपन में समस्त हिमालय घाटी का सर्वेक्षण करे। हम में से कोई अपने इर्द गिर्द विश्व और प्रकृति के तुलनात्मक दृष्टि के लिए आशा नहीं कर सकता। लेकिन नीचे घाटी में खड़े होना और कंचनजंगा के ऊपर सूर्योदय होने की प्रतीक्षा करने में कुछ भी बुराई या हीनता नहीं है।"

"तथ्य यह है कि मानव मन एक ही तरीके से काम करता है। इस से हम पुन: आश्वस्त होते है कि जिन चीजों से हमें आनन्द मिलता है, वे विश्व के हर भाग में लोगों को आनन्द प्रदान करती है। हम सब का साझा हित है और इस तथ्य से इस बात को बल मिलता है कि हमारी एक साझी परम्परा है।"

प्रेरक प्रसंग

दूसरों के प्रेरणा-स्त्रोत

दूसरों में परिश्रम के लिए उत्साह उत्पन्न करने की चन्द्रशेखर में विलक्षण योग्यता थी। उनके मार्गदर्शन मे ५० से ज़्यादा

विद्यार्थीयों ने Ph.D. कार्य किया। अपने विद्यार्थियों के साथ उनके संबंध हमें पुराने ज़माने की 'गुरु शिष्य' परंपरा की याद दिलाते है। विद्यार्थियों से वह आदर प्राप्त करते थे लेकिन वह उन्हें उत्साहित भी करते थे कि वे अपने दृष्टिकोण निर्भीक हो कर रखें।

समर्पित भारतीय

श्री चंद्रशेखर को भारत की बेहतरी और उन्नति की गहरी चिन्ता थी। भारत में बहुत से विज्ञान संस्थानों और युवा वैज्ञानिकों के साथ उनका गहरा संबंध था। अपने बचपन में उन्हें रामानुजम के विज्ञान के प्रति सम्पूर्ण समर्पण के उदाहरण से प्रेरणा मिली थी। रामानुजम की विधवा पत्नी, जो गरीबी की हालत में रह रही थीं, उनके लिए पेंशन राशि में वृद्धि कराने की व्यवस्था भी उन्होंने की थी ।

साहित्य के प्रति रूचि

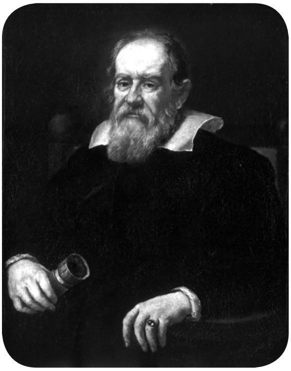
विज्ञान में पूरी तरह तल्लीन होते हुए भी, उनकी अन्य विषयों में भी दिलचस्पी थी आरंभ से ही उसकी साहित्य में रूचि थी। उन्होंने कई बार स्वयं कहा था -" वर्ष १९३२ के आसपास कैम्ब्रिज में साहित्य में मेरी गम्भीर रुचि उत्पन्न हुई। उस समय मेरे लिए वास्तविक खोज रूसी लेखक थे। मैंने योजनाबद्ध तरीके से टर्गनेव के सब उपन्यास, दास्तोवस्की के क्राइम एंड पनिशमेंट, ब्रर्दस कारमाजोव, और पोसेस्ड उपन्यास कांस्टांस गार्नेट अनुवाद में पढ़े। शैकव की सब कहानियों और नाटकों को पढ़ा। टालस्टाय के सब तो नहीं लेकिन अन्ना केरनीना जरूर पढ़ा। अंग्रेजी लेखकों में से मैंने विरजीना वुल्फ, टी एस ईलियट, थामस हार्डी, जॉन गाल्सवर्दी और बर्नाडशा को पढ़ना आरंभ किया। हेनरिक इबसेन भी मेरे प्रिय लेखकों में से एक था।"

चन्द्रशेखर के वैज्ञानिक जीवन का सार था 'एक क्षेत्र की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना, पूर्णरूप से समझ लेना और उसे मूर्त रूप देना'।

श्री कामेश्वर वाली ने उनके बारे में कहा है- "चंद्रशेखर विज्ञान की खोज में सबसे अलग थे। वे अनथक प्रयास और और असाधारण समर्पण के धनी थे। उनका कार्यक्षेत्र खगोल, भौतिकी, गणित, विज्ञान सभी और था। कोई भी व्यक्ति समर्पण, योग्यता, धैर्य और संकल्प शक्ति के सहारे वह सब प्राप्त कर सकता है जो वो चाहता है, यह बात उनके जीवन को देखकर सीखी जा सकती है। उनकी जीवन यात्रा सरल नहीं थी, उन्हें हर तरह की दिक्कतों और परिवेशों का सामना करना पड़ा। वह एक ऐसी रचना थी जिसे भारत (जहाँ उसका जन्म हुआ), इंग्लैंड और अमेरिका की तीन अत्यधिक भिन्न संस्कृतियों की जटिलताओं द्वारा आकार दिया गया।

वह मानवों की साझी परम्परा में विश्वास रखते थे । वह एक महान वैज्ञानिक, एक कुशल अध्यापक और प्रखर विद्वान थे ।

गैलीलियो गैलिली



आधुनिक खगोल विज्ञान का जनक और बलिदानी वैज्ञानिक

- गैलीलियो गैलिली

हमारी दुनियाँ में हमेशा से वैज्ञानिकों को सम्मान और पुरस्कार ही नहीं मिले है, कभी कभी उन्हें, उस समय के समाज में प्रचलित अवैज्ञानिक विश्वासों को गलत साबित करने पर यातनाएँ और मृत्युदंड तक मिला है। लेकिन इन वैज्ञानिकों ने सत्य के साथ कोई समझौता नहीं किया और अपनी बात पर अड़े रहे। जीत अंततः सत्य की ही हुई और उनकी वैज्ञानिक प्रतिभा का लोहा सारे विश्व ने माना। ऐसे ही एक बलिदानी वैज्ञानिक का नाम है 'गैलीलियो गैलिली'

बचपन

इटली का एक खूबसूरत शहर है 'पीसा'। अपने ऐतिहासिक महत्व के अलावा यह शहर पुरे विश्व में 'पीसा की झुकती मीनार' के लिए भी पूरी दुनियाँ में ख़ासा चर्चित है। इसी पीसा शहर में १५ फ़रवरी १५६४ को शहर के एक संगीतज्ञ परिवार गैलिली में गैलीलियो का जन्म हुआ। इनके पिता विन्सौन्जो गैलिली उस समय के जाने माने संगीत विशेषज्ञ थे। वे 'ल्यूट' नामक वाद्ययंत्र बजाते थे, यही ल्यूट बाद में गिटार और बैन्जो के रूप में विकसित हुआ। पिता के संगीत से जुड़े होने के बाद में गैलिलियो का झुकाव तो बचपन से ही विज्ञान की और था, अपने आसपास घट रही घटनाओं के पीछे के कारण ढूंढ़ना उन्हें बहुत अच्छा लगता था । तारों से भरा आसमान, सूर्य और चंद्रमा का आना-जाना उन्हें मानों बचपन से अपनी और आकर्षित करते थे।

वे अपने पिता की छठी संतान थे, प्रसिद्ध ल्यूट वादक और संगीतकार 'माइकलएन्जेलो' भी इन्ही के सबसे छोटे भाई थे। अपनी स्कूली पढ़ाई उन्होंने पास ही के एक स्कूल से पूरी की।

विज्ञान में प्रवेश

युवावस्था में गैलिलियो धार्मिक पुजारी ही बनने की सोच रहे थे लेकिन अपने पिता के आग्रह करने पर उन्होंने शहर

की मुख्य यूनिवर्सिटी में मेडिसिन की पढ़ाई के लिए दाखिला किया।

अपनी चिकित्सा विज्ञान की पढ़ाई करते समय गैलिलियो को जानबूझकर गणित से दूर रखा गया ताकि वे चिकित्सा के क्षेत्र को ही अपना लक्ष्य बनाएं जो की उस समय एक लाभदायक व्यवसाय था, लेकिन संयोगवश एक दिन गैलिलियो ने 'ज्यामिति' पर हो रहे किसी भाषण को सुना और उसके बाद ही उन्हें लगने लगा उनकी सही जगह चिकित्सा विज्ञान नहीं गणित और भौतिक विज्ञान है।

अपने पिता को बता कर उन्होंने मेडिसिन की पढ़ाई छोड़ दी और विषय बदलकर फिलॉसाफी और गणित की पढ़ाई करना शुरू किया। कुछ समय बाद घर की परिस्थिति ख़राब हो गई जिस वजह से गैलिलियो को मजबूरन साल १५८५ में अपनी पढ़ाई छोड़नी पड़ी। इसी दौरान उन्होंने 'थर्मोस्कोप' का निर्माण किया, जो की बाद में 'थर्मामीटर' का जन्म दाता बना। सन १५८६ की बात है जब गैलिलियो ने हाईड्रॉस्टाटिक संतुलन पर एक किताब लिखी जिसने उस समय के प्रमुख वैज्ञानिकों का ध्यान गैलिलियो की ओर आकर्षित किया।

१५८९ में गैलिलियो को पीसा में गणित का प्रमुख नियुक्त किया गया परन्तु जब १५९१ में उनके पिता की मृत्यु हुई तो उनपर अपने छोटे भाई माइकलएंजेलो की जिम्मेदारी भी आ पड़ी। १५९२ में गैलिलियो पादुआ विश्वविद्यालय (University of Padua) में चले गए जहाँ सन १६१० तक उन्होंने ज्यामिति, यांत्रिकी और खगोलशास्त्र पढ़ा।

गहन अनुसंधान की और

अपने इन्ही दिनों में गैलिलियो गहन अनुसंधान में लगे और मौलिक विज्ञान एवं व्यावहारिक विज्ञान में कई महत्वपूर्ण अनुसंधान किये।

उन्होंने भौतिकी में पहली बार ऐसे प्रयोग किए जिनसे "अरैखिक संबंध" का प्रतिपादन हुआ। तब यह ज्ञात था कि किसी वाद्य यंत्र की तनी हुई डोर (या तार) के तनाव और उससे निकलने वाली आवृत्ति में एक संबंध होता है, आवृत्ति तनाव के वर्ग के समानुपाती होती है। संगीत के वाद्‌ययंत्रो के तारों से निकलती ध्वनि के बीच आपस में वैज्ञानिक और गणितीय संबंध है इस बात ने गैलिलियो का ध्यान खिंचा और फिर उन्होंने बाद में पाया कि प्रकृति के नियम गणित के समीकरण होते हैं। आगे चलकर गैलीलियो ने लिखा है - "भगवान की भाषा गणित है"।

गैलीलियो गैलिली के विभिन्न प्रयोग

१. प्रकाश की गति नापने का कदम - गैलीलियो ने प्रकाश की गति नापने की ठानी, इस प्रयोग को करने के लिए गैलीलियो व उनका एक सहायक दो भिन्न पर्वत शिखरों पर कपाट लगी लालटेन लेकर रात में चढ़ गए। सहायक को निर्देश दिया गया था कि जैसे ही उसे गैलीलियो की लालटेन का प्रकाश दिखे उसे अपनी लालटेन का कपाट खोल देना था। गैलीलियो को अपने कपाट खोलने व सहायक की लालटेन का प्रकाश दिखने के बीच का समय अंतराल मापना था-पहाड़ों के बीच की दूरी उन्हें ज्ञात थी। इस तरह उन्होंने प्रकाश की गति ज्ञात की, लेकिन वे एक सच्चे वैज्ञानिक की तरह अपने प्रयोग की पुष्टि भिन्न भिन्न परिस्थितियों में भी करना चाहते थे। इसलिए इस बार उन्होंने ऐसी दो पहाड़ियों का चयन किया जिनके बीच की दूरी कहीं ज्यादा थी। पर आश्चर्य, इस बार भी समय अंतराल पहले जितना ही आया। अर्थात बढ़ी हुई दुरी का भी प्रकाश पर कोई अंतर नहीं आया, अब तक गैलीलियो समझ चुके थे की प्रकाश की गति उनके द्‌वारा बढ़ाई जा रही दूरियों से कई गुना तेज है। उस समय वैज्ञानिक उपकरण इतने सक्षम नहीं थे अतः गैलीलियो को

यही रुक जाना पड़ा लेकिन इस कार्य ने आगे के वैज्ञानिकों को और गहन अनुसंधान के लिए प्रेरित किया और आखिर विज्ञान ने अंततः प्रकाश की गति का सही सही मापन कर ही लिया।

गैलीलियो इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि प्रकाश को चलने में लग रहा समय उनके सहायक की प्रतिक्रिया के समय से बहुत कम होगा और इस प्रकार प्रकाश का वेग नापना उनकी युक्ति की संवेदनशीलता के परे था।

क्रान्तिकारी दिन

वर्ष १६०० और उसके बाद का समय गैलीलियो के जीवन में कुछ अप्रत्याशित बदलाव लाने वाला था, यह वही समय था जब एक सत्य-शोधक को सत्य के कारण भारी दिक्कतों का सामना भी करना पड़ा।

सन् १६०९ में गैलीलियो को दूरबीन के बारे में पता चला जिसका हालैंड में आविष्कार हो चुका था। गैलीलियो ने तुरंत इस बारे में विस्तृत जानकारी इकट्ठा की और बगैर उस दूरबीन को देखें उससे भी कहीं अधिक परिष्कृत और शक्तिशाली दूरबीन स्वयं बना ली।

अब गैलीलियो ने खुद को खगोलीय खोजों में पूरी तरह लगा दिया। सूक्ष्म निरिक्षण करने पर उन्होंने सर्वप्रथम चंद्रमा पर फैले हुए विशाल गड्ढों को देखा। अपने इसी निरिक्षण में आगे बढ़ते हुए जब उन्होंने बृहस्पति ग्रह को देखा तो उन्हें उस ग्रह के अपने चंद्रमा नज़र आए जो की तत्कालीन मान्यताओं के अनुसार पृथ्वी के नहीं बल्कि बृहस्पति के चक्कर लगाते थे। गैलीलियो ने यह भी पाया की शुक्र ग्रह भी चंद्रमा की तरह अपनी घटती बढ़ती कला का प्रदर्शन करता है।

गैलीलियो की अंतरिक्ष संबंधी खोजों से यह साबित हो चुका था कि पृथ्वी, ब्रम्हाण्ड का केंद्र नहीं है, जैसा की उस समय

तक रोमन चर्च द्वारा माना और प्रचारित किया जाता था। गैलीलियो ने बताया की हमारा सौरमण्डल और उसके ग्रह सूर्य के आसपास घूमते है।

चर्च से विद्रोह

इन क्रान्तिकारी खोजों के कारण रोमन चर्च गैलीलियो के विरुद्ध हो गया। परंतु गैलीलियो ने भी सत्य का साथ देने का निर्णय कर लिया था अतः उन्होंने पुरे सबूतों और प्रमाणों के आधार पर अपने सौर केंद्रित सिद्धांत को सार्वजनिक कर दिया। इसके बाद तो नाराज़ चर्च ने गैलीलियो को धर्मद्वेषी मानकर कारावास की सजा सुना दी।

गैलीलियो के लाख प्रयत्न करने के बाद भी चर्च अपनी बात पर अड़ा रहा और उसने गैलीलियो पर मानसिक एवं शारीरिक अत्याचार जारी रखे। गैलीलियो इस व्यवहार को अधिक समय तक सहन नहीं कर सके, चर्च की हठधर्मिता के कारण वे अंदर और बाहर दोनों तरफ से बुरी तरह टूट चुके थे। ६९ वर्ष के बूढ़े गैलीलियो को वर्ष १६३३ में अपने प्रतिपादित सिद्धांत के कारण माफ़ी माँगनी पड़ी, लेकिन उन्होंने तब भी यही कहा कि मेरे माफ़ी माँग लेने से सत्य, असत्य नहीं हो जाएगा।

लेकिन चर्च ने उन्हें उनके घर पर ही नज़रबंद कर दिया, अपनी दयनीय अवस्था में गैलीलियो मजबूर थे और मानसिक विक्षोभ की स्थिति में उन स्वास्थ्य लगातार गिरता चला गया । इस प्रकार लंबी बीमारी और बुखार के चलते ८ जनवरी १६४२ को ७७ वर्ष की उम्र में उनका निधन हो गया।

सत्य की विजय

वर्ष १९९२ में जाकर वैटिकन शहर स्थित ईसाई धर्म की सर्वोच्च संस्था ने यह स्वीकारा कि गैलीलियो के मामले में उनसे गलती हुई थी। यानी उन्हें तीन सौ से अधिक साल लग गए असलियत

को समझने और स्वीकारने में। वर्ष १६०९ में दूरबीन के निर्माण और खगोलीय पिंडों के प्रेक्षण की घटना के चार सौ सालों के बाद ४००वीं जयंती के रूप में वर्ष २००९ को अंतर्राष्ट्रीय खगोलिकी वर्ष के रूप में मनाकर इस महान वैज्ञानिक को श्रद्धांजलि अर्पित कर अपनी भूल का प्रायश्चित करने का प्रयास किया।

वास्तव में यह गैलीलियो की ही नहीं, सत्य की ही विजय है जैसा की महात्मा गाँधी ने कहा था "सत्य परेशान हो सकता है, पराजित नहीं।"

गैलीलियो के प्रेरक वचन

"हम लोगो को कुछ भी नहीं सिखा सकते सिवाय इसके कि हम उनकी मदद करे इस में कि वो खुद इस बारे में जाने |"

"प्रत्येक सत्य समझने में आसान है जब उसे खोज लिया जाये, महत्वपूर्ण तो उसकी खोज है।"

"मैं कभी किसी ऐसे व्यक्ति से नहीं मिला जो इतना व्यर्थ हो की मैं उससे कुछ भी सीख ही न सकूँ।"

"ब्रम्हांड को समझने के लिए सबसे पहले आपको उसकी भाषा समझनी होगी और वह भाषा गणित है।"

"जब बुद्धि हमें गुमराह कर दे तो तर्क को वहाँ प्रस्तुत करना चाहिए।"

"दो सत्य एक दूसरे का विरोध नहीं कर सकते।"

"जूनून शुरुआत है जीनियस बनने की।"

इंसान बनने के लिए हमें हमेशा एक बुद्धिमत्तापूर्ण, विनम्र और सरल वाक्य कहने के लिए तैयार होना चाहिए और वह है - "**मैं नहीं जानता**"

"खुद को जान लेना सबसे बड़ा ज्ञान है।"

लिओनार्दो दा विंची



बहुमुखी प्रतिभा का धनी एक महान वैज्ञानिक: लिओनार्दो दा विंची

कभी कभी हमें धरती के उन आश्चर्यजनक व्यक्तित्वों के बारे में सुनने को मिलता है जो अकेले ही अनेक लोगों के बराबर होते है। लिओनार्दो दा विंची भी एक ऐसे ही बहुमुखी प्रतिभा से संपन्न व्यक्ति थे। वे अपने आप में एक महान चित्रकार, दार्शनिक, शिल्पकार, गणितज्ञ, संगीतज्ञ और वैज्ञानिक थे। दुनियाँ को लिओनार्दो दा विंची के रूप में वो दिशा मिली थी जिसने दुनियाँ को देखने और समझने के मायने ही बदल दिए थे।

बचपन

इटली के एक शहर 'फ्लोरेंस' से सटा हुआ एक गाँव था- 'विन्ची', इसी गाँव में १५ अप्रेल १४५२ एक लड़के का जन्म हुआ। अपने खानदान की परंपरा के अनुसार ही गाँव का नाम 'विन्ची' भी उनके साथ जुड़ गया और इस तरह उनका पूरा नाम पड़ा 'लिओनार्दो दी सर पिएरो दा विंची' जिन्हें अब दुनियाँ 'लिओनार्दो दा विंची' के नाम से जानती है। आजकल के हिसाब से जैसे हमारे नाम के साथ हमारा उपनाम(surname) भी होता है वैसे 'दा विन्ची' लिओनार्दो का उपनाम नहीं था, ये तो बस यह बताता था की उनका जन्म विन्ची गाँव में हुआ था - दा विन्ची मतलब, विन्ची गाँव का|

उनके पिता पिएरो एक प्रसिद्ध वकील थे और माँ कैटरीना, विन्ची गाँव की ही किसी सराय में कभी नौकरानी का काम करती थी। अपने पुत्र को उसके पिता को सुपुर्द कर उस महिला ने किसी भवन निर्माता से विवाह कर लिया था। बाद में उनके पिता ने एक और विवाह अलबीरा अमादोरी नामक युवती के साथ किया जो लिओनार्दो को बहुत चाहती थी लेकिन दुर्भाग्यवश वह जल्दी ही मर गई। एक बार फिर लिओनार्दो अकेले हो गए।

पढ़ाई और जिंदगी के सबक

अपनी बचपन की उथलपुथल भरी जिंदगी में लिओनार्दो की शुरूआती पढ़ाई घर पर ही हुई, यहाँ उन्होंने लैटिन, ज्यामिति

और गणित की कुछ पढ़ाई की। प्रकृति और अपने आसपास घट रही घटनाएँ छोटे लिओनार्दो को सदा से आकर्षित करती रही। अपने बचपन की एक यादगार घटना, जिसे वे बाद की जिंदगी में अक्सर सुनाते थे वह थी, इनके गाँव से सटी एक पहाड़ी पर दिखती एक बड़ी काली गुफ़ा और उन्हें लगता था कि उसमे कोई विशाल राक्षस रहता है। वे बचपन में उस गुफा के भीतर की सच्चाई को खोजने के लिए अक्सर कोशिश भी करते थे।

संगीत, चित्रकारी और मूर्तिरचना शुरू से ही लिओनार्दो के प्रिय विषय रहे और यही कारण था की इनके पिता ने इन्हें प्रसिद्ध चित्रकार, मूर्तिकार तथा स्वर्णकार, आँद्रेआ देल वेराक्यो के पास ले गए। वेराक्यो उस समय के जानेमाने कलाकार थे और उनके पास अनेकों शिक्षार्थी काम करते हुए विभिन्न कलाओं को सीखते थे। यह समय सन १४७० से १४७५ तक का था और अपने गुरु वेरॉक्यो के साथ काम करते हुए भी लिओनार्दो ने अपनी प्रतिभा से अपने से बड़े छात्रों तक को आश्चर्यचकित कर रखा था। उनकी लगन, कुशलता और मूर्तिकारी को देखकर सभी लोग ठगे से रह जाते थे।

यहाँ लियोनार्दो ने धातुकारी, चर्मकारी, बढ़ईगिरी, चित्रकला और मूर्तिकला जैसे विषयों को सीखा। उनका सबसे पहला ज्ञात काम १४७३ में बनाया गया एक परिदृश्य(लैंडस्केप) चित्र था।

वेराक्यो की कार्यशाला में काम करते समय ही युवा लियोनार्दो ने अनेकों शानदार शिल्पों और चित्रों का निर्माण कर दिया था जिनमें से “Baptism of Christ” नामक चित्र प्रमुख था। अपने छात्र के द्वारा किये गए उस चित्रकला के असाधारण प्रदर्शन को देखकर उनके गुरु आँद्रेआ देल वेराक्यो इतने भावुक हो गए की उसके बाद उन्होंने कभी ब्रश को नहीं छुआ। युवा लियोनार्दो के लिए किसी कलाकार के तरफ से दिया जा सकने वाला ये सबसे बड़ा सम्मान था। लियोनार्दो ने १४७७ तक वेराक्यो की कार्यशाला में काम किया।

सम्मान और प्रतिभा के दिन

यह १५ वीं सदी का समय था और फ्लोरेंस उस समय इटली में कला कौशल का उत्कृष्ट केंद्र बना हुआ था। उस समय वहाँ उच्चस्तरीय और गुणवत्तापूर्ण कारीगरी और कला को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से विभिन्न कला-कौशल समितियाँ बनी थी। जिन्हें "गिल्ड" कहा जाता था। २० से २३ वर्ष की उम्र में लियोनार्दो ने अपने कला-कौशल को इतना निखार लिया था की उन्हें सेंट ल्यूक गिल्ड का सदस्य चुन लिया गया। यह गिल्ड मुख्यरूप से चिकित्सकों और चित्रकारों का समूह थी, और वहाँ जुड़ने के बाद लियोनार्दो के पास अपनी प्रतिभा को निखारने और व्यवसाय करने का अच्छा मौका मिला।

लियोनार्दो की एक विशेष खूबी थी उनकी तीव्र बुद्धि और सूक्ष्मदृष्टि, बचपन से ही वे अपने विचारों को अपनी कॉपी में लिखते रहते थे। अपने आसपास की चीज़ों को देखने भर से उनका प्रतिभाशाली दिमाग ये समझ जाता कि इस चीज़ में क्या ख़ामी है, अगर मौका मिलता तो लियोनार्दो फट से उस ख़ामी को दूर कर देते या फिर उसका समाधान अपनी कॉपी में नोट कर लेते। उनका, मानव शरीर के हावभाव, अंगो के आकर और आकृति का अध्ययन इतना स्पष्ट था कि वो अगर एक क्षण के लिए भी किसी के हावभाव देखे लेते तो उसका चेहरा जस का तस कागज़ पर उतार देते। बाद में अपनी इसी तीक्ष्ण दृष्टि और कल्पनाशक्ति का प्रयोग करके उन्होंने 'द लास्ट सपर' और 'मोनालिसा' जैसी अद्भुत और असाधारण तस्वीरों का निर्माण किया जो आज तक विश्वभर के कलाकारों के लिए अध्ययन और सम्मान का विषय बने हुए है।

मिलान में राजा के साथ काम

तीस वर्ष की आयु में फ्लोरेंस की राजनैतिक उथलपुथल को छोड़कर लियोनार्दो इटली के मिलान शहर में आ गये। उन्होंने

यहाँ १४८२ से १४९९ का समय गुज़ारा। मिलान आने के पीछे का मुख्य उद्देश्य रोजगार की तलाश था और इसलिए यहाँ आने के बाद लियोनार्दो ने वहाँ के ड्यूक(राजा) को एक पत्र लिखकर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। ड्यूक को अपने राज्य के लिए नए हथियारों की ज़रुरत थी और लियोनार्दो ने उन्हें यह विश्वास दिलाया की वे ड्यूक की इस काम में मदद कर सकते है। अतः उन्हें ड्यूक की और से मिलेट्री इंजीनियर के रूप में नौकरी मिल गयी। इन्ही दिनों लियोनार्दो ने एक चित्र पर काम किया जिसका शीर्षक था 'वर्जिन ऑफ द रॉक्स', अपनी मौलिक सोंच और कल्पनाशक्ति के कारण लियोनार्दो ने उस चित्र में कुछ ऐसे प्रयोग किये की इस चित्र की प्रसिद्धि आग की तरह सारे शहर में फैल गयी।

द लास्ट सपर

ड्यूक के लिए काम करते हुए लियोनार्दो ने हथियारों की डिजाइन पर काम किया जिसका उद्देश्य हथियारों का उठाने में हल्का परन्तु तीक्ष्ण बनाना था। जिसमे प्रमुख रूप से एक साथ अनेकों बारूद के गोले दागने वाली तोपें शामिल थी, ड्यूक ने लियोनार्दो को शस्त्रों की डिजाइन के अलावा कई स्थानों पर चित्रकला के कार्य भी सौपे। इन सभी कार्यो में सर्वाधिक चर्चित रहा, वहाँ स्थित संत मारिया मठ के भोजनकक्ष के दीवार पर बनाई गया भित्तिचित्र (म्यूरल) 'द लास्ट सपर' ।

लियोनार्दो इस काम में अपनी पूरी प्रतिभा झोक देना चाहते थे, उन्होंने इस तस्वीर को त्रि-आयामी आभास देने वाली बनाने की सोची जो कि उस समय के कलाकारों के लिए अकल्पनीय था। यह चित्र, जीज़स को सूली देने के एक रात पहले अपने १२ शिष्यों के साथ किये गए अंतिम भोजन की घटना पर आधारित था, जिसमे जीज़स को पता था की इन्ही १२ शिष्यों में से एक शिष्य, अगली सुबह भेदी बनकर चंद सिक्कों के लालच में आकर उन्हें धोखा देगा।

लियोनार्दो ने इस चित्र में वो कर दिखाया जो अविश्वसनीय था, उनके इस चित्र में मानवीय भावों जिसमें जीज़स की करुणा और धूर्त शिष्य जूदास की धूर्तता दोनों का जीवंत चित्रण होना था। लगभग ३ साल के अपने अथक प्रयासों के बाद जब लियोनार्दो ने 'द लास्ट सपर' नाम के इस म्यूरल को पूरा किया था तो उसे देखने वाला हर व्यक्ति दाँतों तले ऊँगली दबा लेता था। इस प्रकार लियोनार्दो की यह कृति इतिहास में अमर हो गयी।

एक बार फिर 'फ्लोरेंस' में वापसी

१४९९ के आसपास फ्रांसिसी सेना ने मिलान पर आक्रमण कर दिया और ड्यूक लुडविकों को जान बचाकर भागना पड़ा। लियोनार्दो ने बचपन से ही युध्द, आक्रमण और रक्तपात देखा था, उन्हें एक मानव की इस प्रकार दूसरे मानव के साथ की गई ज़्यादती से सख़्त नफ़रत थी, वे युद्ध के घोर विरोधी थे। एक बार फिर युद्ध के कारण उन्हें अपने संरक्षक ड्यूक को खोना पड़ा और लियोनार्दो फिर एक बार अकेले हो गए। लियोनार्दो ने मिलान के दिनों में जितना काम किया था उसमे से बहुत से चित्र, मॉडल और मूर्तियों को उन्हें वहीं बेचना पड़ा, इस तरह मिलान छोड़ना उनके लिए दुखदायक था परंतु समय के सामने वे एक बार फिर मज़बूर थे।

इस तरह लियोनार्दो एक बार फिर वर्ष १५०० में ५० वर्ष की आयु में वापस अपनी मातृभूमि फ्लोरेंस लौट आये और छः सालों तक वहीँ रहे |

शरीर-रचना का अध्ययन

लियोनार्दो एक चित्रकार ही नहीं, महान वैज्ञानिक भी थे। वह मानव शरीर की अद्भुत कार्यप्रणाली को बड़ी गहराई से देखना और समझना चाहते थे। हृदय क्यों धड़कता है, बाल और

नाख़ून क्यों बढ़ते है, उँगलियाँ कैसे मुड़ती है, माँसपेशियाँ कैसे कार्य करती है, हड्डियों के अंदर क्या है, ऐसे अनेकों प्रश्न उन्हें घेरे रहते थे। अपनी इन्ही जिज्ञासाओं को शांत करने के लिए लियोनार्दो कब्रिस्तान में जाकर मुर्दा शरीरों की चीरफाड़ करने में भी नहीं डरते थे।

उन्होंने कई मानव शरीरों की चीरफाड़ कि और अपनी नोटबुक में शरीर सम्बन्धी बहुत सारी जानकारियों को लिखा। उन्होंने मानव शरीर के विभिन्न अंगो का, जानवरों के अंगो से भी तुलनात्मक अध्ययन किया और अपने नोट्स बनाये। उस समय वहाँ के समाज ने लियोनार्दो के इस काम को अलग अलग नज़रिये से देखा -किसी ने उन्हें पागल सनकी समझा तो किसी ने धुन का पक्का। प्रतिष्ठा की जगह ज्यादातर तो हँसी ही उड़ाई गयी परंतु लियोनार्दो बगैर किसी की परवाह किये लगे रहे। अपने अनुसंधान के दौरान लियोनार्दो ने २०० से भी अधिक चित्र तैयार किये जो की आज तक चिकित्सा विज्ञान और शरीरशास्त्र की बेहतरीन धरोहर है।

मोनालिसा की अद्भुत तस्वीर

समय के साथ साथ लियोनार्दो की कला और प्रतिभा और भी बेहतर होती जा रही थी फिर सन १५३० से १५०७ के बीच में उन्होंने मोनालिसा की वो अद्भुत पेंटिंग बनाई जिसे आज विश्व की अप्रतिम धरोहर माना जाता है। यह तस्वीर फ्लोरेंस के एक गुमनाम से व्यापारी 'फ़्रांसेस्को देल जियोकॉन्डो' की पत्नी 'लीज़ा घेरार्दिनी' को देखकर बनाई गई है। यूँ तो इस तस्वीर की तरह ही इससे जुड़ी कथाएँ भी बड़ी पुरानी है। मोनालिसा की मुस्कान का राज़ सुलझाने वाले वर्षो तक उसकी मुस्कान के पीछे छुपी उसके मन की भावनाओं की ख़ोज करते रहे। किसी ने कहा की तस्वीर बनवाते वक्त मोनालिसा गर्भवती थी और उसके चहरे से उनके आने वाले बच्चे की ख़ुशी झलक

रही है, तो किसी ने उसे अपनी कुछ ही माह पहले मरी माँ की याद में अपने दुःख को छुपाते हुये बताया है। दावे तो यहाँ तक भी हुए कि मोनालिसा के ऊपर के २ दाँत टूटे थे जिसको छिपाने के लिए वो इस तरह से मुस्कुरा रही है। एक चौकाने वाला दावा यह भी है कि दरअसल मोनालिसा नाम की कोई युवती थी ही नहीं। ये तो लियोनार्दो ने स्वयं की ही तस्वीर को बग़ैर दाड़ी-मूंछ और पुरुष मांसपेशियों के कल्पना कर बनाया है और लियोनार्डो ही मोनालिसा है। सच्चाई जो भी हो इस महान तस्वीर का रहस्य अब तक बरक़रार है और दुनियाँ भर के कलाप्रेमियों के लिए यह प्रशंसा और शोध का अद्भुत विषय बनी हुई है।

गिनीज़ बुक ऑफ़ वर्ल्ड रिकॉर्ड ने मोनालिसा के इस चित्र को विश्व का सबसे महँगा बीमा वाला चित्र करार दिया है। यह पेंटिंग अब पेरिस के लूव्र संग्रहालय में संरक्षित है एवं १४ दिसम्बर १९६२ के आंकलन के हिसाब से इस पेंटिंग की तब क़ीमत लगभग १०० मिलियन डॉलर थी जो २०१६ के हिसाब से लगभग ७९० मिलियन डॉलर अर्थात ५२ अरब रुपए से ज्यादा आँकी गयी है।

विज्ञान को देन

लियोनार्डो का सारा जीवन की कला और विज्ञान की सेवा में बीता। चाहे वह महान चित्र हो या विज्ञान के अनोखे अविष्कार। लियोनार्डो ने अपने जीवन काल में कैंची, स्क्रू के आँटे बनाने की मशीन, जल शक्ति से चलने वाली घड़ी, पैराशूट, हैलीकॉप्टर का मॉडल, मशीनगन, स्वचलित गाड़ी, गोताखोरों की पोशाख, भविष्य के शहरों की रुपरेखा जैसे कई महान आविष्कार किये। लियोनार्डो विलक्षण प्रतिभा के धनी थे और दुनियाँ की परवाह करे बगैर वे मानो विज्ञान के किसी अभियान को पूरा करने के लिए धरती पर आये थे।

अंतिम समय

सन १५१९ में लियोनार्डो गम्भीर रूप से बीमार पड़े वे उस समय ६७ वर्ष के थे। उनके दाएँ शरीर को लकवा होने के बाद भी वे अपने बाएँ हाथ से लिखते और चित्र बनाते रहते। उस समय का फ्रांस का राजा उनका अत्यंत प्रशंसक था अपने अंतिम समय में लियोनार्डो ने उनके ही हाथों में अपने प्राण त्यागे, २ मई १५१९ को इस बहुमुखी प्रतिभा के धनी जादुगर ने दुनियाँ को अलविदा कह दिया। इस महान वैज्ञानिक व्यक्तित्व को ससम्मान फ्रेंच चैपल में दफ़नाया गया।

लिओनार्दो दा विंची के अंतिम शब्द थे “मैनें भगवान और मानवता को नाराज़ किया हैं, मेरा काम उस गुणवत्ता तक नही पहुँचा जहाँ तक पहुँचना चाहिए था।”.

लिओनार्दो के प्रेरक वचन

“सादगी(सरलता) परम जटिलता है।”

“जैसे एक अच्छी तरह बिताया दिन सुखद नींद लेकर आता है, उसी तरह एक अच्छी तरह बिताया जीवन एक सुखद मृत्यु लेकर आता है।”

“जहाँ आत्मा, हाथों से काम नहीं करती, वहाँ कोई कला नहीं है।”

“समय उसके लिए लम्बे समय तक रहता है, जो इसका इस्तेमाल करता है।”

“जो आप नहीं समझते, यदि उसकी तारीफ़ करते हैं तो बुरा करते हैं, लेकिन अगर निंदा करते हैं तो और भी बुरा करते हैं।”

“जीवन में आप जो भी कुछ नया करते है, उनमें से ज्यादातर में असफल हो जाते है और कुछ में सफ़ल। अगर आप कुछ बड़ा कर जाते है तो ज्यादातर लोग उसकी नक़ल कर लेते

है लेकिन तब तक आप और किसी काम में लग जाते है। राज़ तो हमेशा और कुछ करते रहने में ही है ।”

“मैं हमेशा से यह बात जानता था की सफल लोग बैठ कर चीज़ों के होने का इन्तज़ार नहीं करते वे तो बाहर निकलकर खुद उन्हें कर ड़ालते है।”

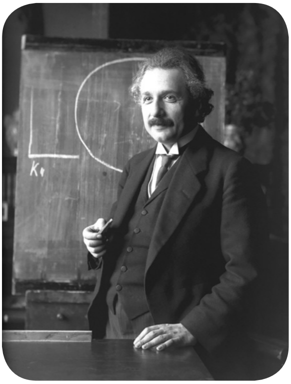
“बिना काम में लिए तो लोहा भी जंग खा जाता है, एक जगह रुके रहने से तो पानी भी अपनी शुद्धता खो देता है... इसी तरह ख़ाली और निट्ठल्ला बैठे रहना दिमाग़ की ताक़त को ख़त्म कर देता है।”

“वो जो एक दिन में अमीर बनना चाहता है उसे एक साल में फांसी पर लटका दिया जायेगा।”

“अगर आप सदाचार बोओगे तो सम्मान की फ़सल काटोगे।”

“सिर्फ जान लेना पर्याप्त नहीं हमें उसे व्यवहार में भी लाना होगा, करने की इच्छा होना काफ़ी नहीं हमें तो वास्तव में काम को करना होगा।”

अल्बर्ट आइंस्टीन



सापेक्षवाद का सिद्धांत देकर दुनियाँ का भविष्य बदल देने वाला महान वैज्ञानिक

- अल्बर्ट आइंस्टीन

एक ऐसे बालक के बारे में कल्पना कीजिये जिसकी याद्दाश्त बचपन से ही कमज़ोर हो, जिसे उसके अध्यापक और माँ-बाप दोनों ही नापसंद करते हो, जो स्वभाव से ही शरारती और दब्बू लगता हो और जिसने अपनी पहली नौकरी तीसरी श्रेणी के क्लर्क के रूप में की हो उसके जीवन से हम क्या सीख सकते है। बहुत कुछ ! जब यही नाकारा सा दिखने वाला बालक आगे चलकर विश्व के सामने विज्ञान की अनोखी और अपूर्व खोजों के रहस्य को रखने लगा तो सारी दुनियाँ उसे हैरान होकर देखने लगी। कठिनाईयों के बीच में अक्सर अवसरों की प्राप्ति होती है का विचार देने वाले इस महान वैज्ञानिक को सारी दुनियाँ नोबेल पुरस्कार विजेता अल्बर्ट आइंस्टीन के नाम से जानती और सलाम करती है।

बचपन:

अल्बर्ट आइंस्टीन का जन्म १४ मार्च १८७९ की जर्मनी में वुटेमबर्ग के एक यहूदी परिवार में हुआ। उनके पिता हरमन आइंस्टीन एक इंजीनियर और सेल्समैन थे। उनकी माँ पौलीन आइंस्टीन थी। अल्बर्ट, अपने माता पिता की पहली संतान थे। अल्बर्ट के जन्म के कुछ वर्षो में ही उनके पिता हरमन आइंस्टीन का व्यापार ख़त्म हो गया और उनका पूरा परिवार म्यूनिख़ शहर आ गया। म्यूनिख़ शहर में उस समय कैथोलिक ईसाईयों का बोलबाला था और शहर में बहुत से चर्च थे। आइंस्टीन परिवार यहूदी था लेकिन उतना कट्टर नहीं इसी कारण आइंस्टीन को कैथोलिक विद्यालय में पढ़ने की अनुमति मिल गयी।

बाद में ८ साल की उम्र में वे वहाँ से स्थानांतरित होकर लुइटपोल्ड जिम्नेजियम (जिसे आज अल्बर्ट आइंस्टीन जिम्नेजियम के नाम से जाना जाता है) गये, जहाँ उन्होंने माध्यमिक और उच्च माध्यमिक शिक्षा ग्रहण की, वे वहाँ अगले ७ सालो तक रहे, जब तक उन्होंने जर्मनी नहीं छोड़ी। अल्बर्ट

आइंस्टीन बचपन से ही डिस्लेक्सिया नाम की बीमारी से पीड़ित थे लेकिन इसके बारे में तब इतनी अधिक जानकारी नहीं थी। इसके चलते उन्हें अक्षरों को पहचानने और समझने में अक्सर गलतियाँ होती थी और लिखना तो जैसे उनके लिए असंभव ही था।उनके शिक्षकों ने तो उनके पिताजी को, यहाँ तक कह दिया था कि अल्बर्ट का भविष्य बिल्कुल अंधकारमय है, और वे आगे चलकर कुछ नहीं कर पाएँगे।

लेकिन नन्हे अल्बर्ट पर पढ़ाई की धुन सवार रहती थी, लाख दिक्कतों के बाद भी उन्होंने हार नहीं मानी और हर दिन वे खुद को पहले से बेहतर बनाने की कोशिशें करते रहे। नन्हे अल्बर्ट को उनके चाचा जैकब ने बहुत मदद की, वे उन्हें बाहर घुमाने ले जाते और आसमान, चाँद और तारों के बारे में तरह तरह की बातें बताते। जैकब ने ही अल्बर्ट को बीजगणित से परिचित करवाया और धीरे धीरे नन्हे अल्बर्ट की उसमे रूचि भी बढ़ती गयी।

पढ़ाई के दिन

अल्बर्ट अपनी मानसिक कमजोरियों को खुद पर हावी नहीं होने देते थे, सहपाठियों और शिक्षकों की उपेक्षा और मज़ाक की वज़ह से अल्बर्ट कुछ अंतर्मुखी स्वभाव के अवश्य हो गए थे। वे डरे-डरे और अलग रहने का प्रयास करते थे । पढ़ाई के इन्ही दिनों में अल्बर्ट की मित्रता मैक्स टॉलमें नामक छात्र से हुई, उन्होंने ही अल्बर्ट को विज्ञान के प्रति और पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया और अल्बर्ट भी उनके साथ गणित, विज्ञान और भौतिकी से संबंधित अपनी जिज्ञासाओं को रखने लगे।

अल्बर्ट के पास हर बात के लिए 'क्यों' और 'कैसे' शब्द तैयार रहते थे, उनके शिक्षक उनकी इस अत्यधिक प्रश्न पूछने की आदत से परेशान थे, कभी कभी तो उनके प्रश्नों के चक्कर में कक्षा का पूरा समय निकल जाता था। इसी वजह अल्बर्ट

को अपनी डिप्लोमा की पढ़ाई बीच में से ही छोड़कर स्कूल से जाना पड़ा।

अल्बर्ट के पिता हरमन चाहते थे कि उनका पुत्र तकनीकी शिक्षा की ओर ध्यान दें। उस समय यूरोप में स्विस फेडरल पॉलिटेक्निक स्कूल मध्य यूरोप में सबसे अच्छा तकनीकी स्कूल माना जाता था। उस स्कूल में प्रवेश के लिए प्रवेश परीक्षा पास करना होती थी इसलिए वहाँ डिप्लोमा की कोई आवश्यकता नहीं थी। हरमन ने अलबर्ट को उस प्रवेश परीक्षा में बैठने के लिए कहा और १६ वर्ष की आयु में सन १८९५ में अल्बर्ट उस परीक्षा में बैठे भी। जब परीक्षा परिणाम आया तो पता चला की अल्बर्ट वह परीक्षा पास नहीं कर पाए हैं, परंतु गणित और भौतिकी के विषय में उनके अंक असाधारण थे। लेकिन अनिवार्य योग्यता के रूप में अल्बर्ट को अपनी स्कूल की शिक्षा भी पूरी करनी थी इसलिए उन्हें वहाँ से २० मील दूर स्विट्जरलैंड के अराउ के एक स्कूल में भर्ती कराया गया।

सन १८९६ में अल्बर्ट फिर से पॉलिटेक्निक स्कूल की प्रवेश परीक्षा हेतु बैठे और इस बार उन्होंने सफलतापूर्वक प्रवेश परीक्षा को पास किया और इस प्रकार उनके ४ वर्षीय पाठ्यक्रम का सफर शुरू हुआ।

युवा आइंस्टीन

सन १९०० में अपनी पढ़ाई पूरी करने के बाद आइंस्टीन लगातार २ वर्षों तक एक अच्छी नौकरी के लिए संघर्ष करते रहे वे चाहते थे कि उन्हें भौतिकी विभाग में पढ़ाने के लिए शिक्षक का पद मिले परंतु उन्हें ऐसा अवसर नहीं मिला। आखिरकार उन्हें स्विस पेटेंट कार्यालय में तृतीय श्रेणी के तकनीकी विशेषज्ञ के रूप में नौकरी करनी पड़ी। इसी कार्यालय में वर्ष १९३० में उन्हें स्थाई रूप से कार्य करने का निमंत्रण भी मिल गया। अपनी नौकरी के दौरान भी आइंस्टीन भौतिकी और गणित के गहन

अध्ययन में लगे रहे और लगन के साथ अपने शोध कार्यों को आगे बढ़ाते रहें।

करिश्माई साल

३० अप्रैल १९०५ में आइंस्टीन ने ज्यूरिख विश्वविद्यालय से अपनी रिसर्च की पढ़ाई पूरी की और उन्हें पी.एचडी. प्रदान की गई । यह वर्ष आइंस्टीन के जीवन में एक करिश्माई वर्ष साबित हुआ, इस वर्ष उनके ४ शोधपत्र, उस समय के प्रसिद्ध शोध संकलन Annalen der Physik में प्रकाशित हुए। प्रकाशित शोधपत्रों का मुख्य विषय प्रकाश-विद्युत प्रभाव, ब्राउनी गति सिद्धांत, सामान्य सापेक्षता सिद्धांत और द्रव्यमान-ऊर्जा सबंध रहे; जिन्होंने भौतिक विज्ञान के जगत में तहलका मचा दिया। अपने चौथे शोधपत्र में आइंस्टीन ने E=MC2 का सिद्धांत दिया जिसके अनुसार पदार्थ के छोटे छोटे अणु भी भारी ऊर्जा के उत्पादन में रूपांतरित किये जा सकते है, यह अणु-विज्ञान और परमाण्विक ऊर्जा के उत्पादन की तरफ बढ़ता हुआ सर्वाधिक सशक्त कदम था।

जब सारी दुनियाँ का ध्यान इस महान वैज्ञानिक की तरफ आकर्षित हुआ उस समय वे मात्र २६ वर्ष के युवक थे। लेकिन अब आइंस्टीन की गिनती विश्व के महान वैज्ञानिकों में होने लगी थी।

आगे के वर्ष

जुलाई १९०९ के वर्ष में आइंस्टीन को मैडम क्यूरी के साथ जिनेवा में सम्मानित किया गया और स्थान स्थान पर उन्हें वैज्ञानिक भाषणों सेमिनारों और दशाओं के लिए आमंत्रित किया जाने लगा। साल्जबर्ग में उन्हें प्लैंक, वीन, रुबेंस और समरफिल्ड जैसे विद्वानों के बीच बोलने का मौका मिला। अब आइंस्टीन अपना शेष जीवन शोध और अध्यापन में

ही देना चाहते थे इसलिए उन्होंने ६ जुलाई १९०९ स्विस सरकार को पेटेंट विभाग की अपनी नौकरी से मुक्त होने के लिए अपना त्यागपत्र दे दिया। वर्ष १९०९ से १९१४ तक वे ETH ज्यूरिख महाविद्यालय में ही सैद्धान्तिक भौतिकी के व्याख्याता रहे।

१९१४ में वे पुनः जर्मनी के क़ैसर विल्हेम भौतिकी संस्थान (Kaiser Wilhelm Institute for Physics) के निदेशक के पद पर चुने गए जल्द ही वर्ष १९१६ में उन्हें जर्मन भौतिकी संस्था का अध्यक्ष भी चुन लिया गया। नवंबर १९१५ तक आइंस्टीन ने अपने सामान्य सापेक्षतावाद के सिद्धांत को पूर्ण रूप से विकसित कर लिया था, जिसे वे अपने पुरे जीवन का सार कहते थे।

नोबेल पुरस्कार

हालाँकि आइंस्टीन ने १९०५ में ही अपनी वैज्ञानिक अनुसंधान को उस सदी की सबसे महत्वपूर्ण खोज में शामिल कर दिया था लेकिन राजनैतिक कारणों के चलते उन्हें नोबेल पुरस्कार वर्ष १९२० में मिला। जैसी की उन्हें अपेक्षा थी की यह सम्मान उन्हें सामान्य सापेक्षता से सिद्धांत की खोज के लिए मिले, उसके विपरीत उन्हें यह पुरस्कार सैद्धान्तिक भौतिकी में किये गए अपने उल्लेखनीय कार्यो और प्रकाश-विद्युत प्रभाव के नियम की खोज करने के लिए दिया गया।

अमेरीका की यात्रा

जर्मनी में हालात तेजी से बदल रहे थे और दिनोंदिन यहूदी विरोधी तेज होता जा रहा था। उस समय यहूदी यरुशलम में एक विश्वविद्यालय का निर्माण करना चाहते थे और आइंस्टाइन उनकी आर्थिक मदद करने के लिए कृतसंकल्प थे। इस धनराशि को जुटाने के लिए उन्होंने अमेरिका जाकर व्याख्यान देने का

निर्णय किया और शीघ्र ही उन्हें अमेरिका से निमंत्रण भी मिलने लगे। आइंस्टीन, अंग्रेजी और फ्रेंच में कमजोर थे इसलिए उन्होंने अपने व्याख्यानों को जर्मन भाषा में ही देने का निर्णय किया और अमेरिका सहित इंग्लैंड में भी उन्होंने अपने व्याख्यान जर्मन में ही दिए। इंग्लैंड ने उन्हें डॉक्टर ऑफ साइंस की उपाधि से भी सम्मानित किया। १९३० में आइंस्टीन एक बार फिर अमेरिका स्थित कैलिफोर्निया इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी में एक शोधार्थी के रूप में कार्य करने के लिए आये। जर्मनी में बढ़ती हुई राजनैतिक अस्थिरता और युद्ध के वातावरण से दूर होने के लिए सन १९३५ में आइंस्टीन ने न्यूजर्सी के इंस्टिट्यूट फॉर एडवांस स्टडी प्रिंसटन में कार्य शुरु कर दिया और फिर वह अपनी मातृभूमि कभी नहीं लौटे।

अमेरीका के दिन और परमाणु बम का कहर

१९३९ के वर्ष में आइंस्टीन और उनके साथी वैज्ञानिकों ने तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति फ्रेंकलिन रूजवेल्ट को नाजियों द्वारा बम बनाए जाने के बारे में सचेत किया और अमेरिका को अपने आणविक हथियार बनाने के लिए अनुरोध किया।जल्द ही अमेरिका ने परमाणु हथियारों को बनाने का कार्यक्रम को शुरू किया और द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान अमेरिका, परमाणु हथियारों के उत्पादन को सफलतापूर्वक कर लेने वाला विश्व का पहला देश बन गया। फिर ६ और ९ अगस्त १९४५ का वह काला दिन आया जब अमेरिका ने जापान के विरुद्ध हिरोशिमा और नागासाकी पर पहली बार परमाणु हमला किया और लाखों लोगों का भीषण नरसंहार हुआ।

इस हमले ने पूरे विश्व की मानवता को अंदर तक हिला दिया, लाखों मासूम लोगों, स्त्रियों और बच्चों और निर्दोष जानवरों की अकारण मौत ने आइंस्टीन को अंदर तक झकझोर दिया। अपने जीवन के अंतिम दिनों तक आइंस्टीन को यह बात

घाव की तरह चुभती रही कि उन्होंने परमाणु बम बनाने के लिए राष्ट्रपति रूजवेल्ट को अपना सुझाव भेजा था।

इस घटना के बाद आइंस्टीन ने अपना शेष जीवन शांति और समाजवाद की स्थापना और उसके महत्व के बारे में लोगों को समझाने में लगा दिया। वे १९३९ में गुरुदेव रविंद्रनाथ टैगोर से भी मिले।

महात्मा गांधी के अहिंसक आंदोलन और सविनय अवज्ञा आंदोलन ने आइंस्टीन को बेहद प्रभावित किया और उन्होंने १९३१ में महात्मा गांधी को एक पत्र भी लिखा जिसमें वह कहते हैं कि- “आपने अपने कार्यों से यह दिखला दिया कि अहिंसा के द्वारा भी जीत संभव है... मेरी हार्दिक इच्छा है कि आपसे एक बार प्रत्यक्ष मुलाकात हो।”

१९५० में अपने एक भाषण में उन्होंने कहा कि गांधी जी हमारे समय के सबसे महान नेताओं में से सर्वश्रेष्ठ थे। हमें उनकी शिक्षाओं के अनुरूप चलते हुए अहिंसा और सविनय अवज्ञा के द्वारा उन चीजों से लड़ना चाहिए जिन्हें हम बुरा समझते हैं ।

अपने अंतिम दिनों में आइंस्टीन

विश्वयुद्ध की भयानक त्रासदी के बाद आइंस्टीन वैश्विक रूप से समस्त राष्ट्र और मानवों की एकता के बारे में सोचने लगे थे। नवंबर १९४७ में आइंस्टीन ने संयुक्त राष्ट्र महासभा को एक खुला पत्र लिखकर सुझाव दिया कि विश्व की तमाम सरकारें अपने अधिकार एक विश्व सरकार को सौंप दे। हालांकि उस समय के सभ्य समाज ने भी उनके सुझाव का मजाक बनाया लेकिन आइंस्टीन इस संबंध में बेहद गंभीर थे और लगातार इस दिशा में प्रयास करने की वकालत करते रहे। अपने अंतिम दिनों में खुद को हारा हुआ सा महसूस करने लगे थे और कई बार खुद को सिर्फ एक भौतिकशास्त्री और वैज्ञानिक के रूप में

देखने के लिए अनुरोध करते थे। इन दिनों में भी राजनीति से दूर रहने का हर संभव प्रयास कर रहे थे।

बचपन से उन्हें संगीत के प्रति विशेष लगाव था इसलिए अपने जीवन के अंतिम दिनों में भी वह लंबी दूरी तक घूमना पियानो बजाना और मोजार्ट के संगीत को सुनना पसंद करते थे। यहूदी होने के बावजूद भी वह धर्म को लेकर कट्टर नहीं थे। उनका मानना था कि जीवन या मृत्यु के डर से ईश्वर को मानना व्यर्थ है। वे चाहते थे कि संसार में भाईचारा तो हो परंतु किसी भी व्यक्ति की मौलिकता की आहुति नहीं दी जाए।

अलविदा

अपने अंतिम समय में आइंस्टीन गंभीर रूप से पेट की बीमारी का शिकार हो गए थे, उन्हें प्रिंसटन के यूनिवर्सिटी मेडिकल सेंटर ले जाया गया परंतु उन्होंने ऑपरेशन से मना कर दिया। उन्होंने कहा कि कृत्रिम रुप से जीवन को कुछ और लंबा खींचना व्यर्थ है।मैंने अपना जीवन जी लिया है और विश्व को जो कुछ मैं दे सकता था मैंने दे दिया है और अब मैं शांति से विदा होना चाहता हूँ । १८ अप्रैल १९५५ को ७६ वर्ष की उम्र में आइंस्टीन ने सदा के लिए इस दुनिया से विदा ले ली।इस महान भौतिकविद को विज्ञान जगत में उनके अभूतपूर्व योगदान के लिए सदैव स्मरण किया जाता रहेगा।

अल्बर्ट आइंस्टीन के प्रेरक विचार

“यदि आप प्रसन्नतापूर्वक जीना चाहते हो तो इसे एक व्यक्ति या वस्तु के बजाय एक लक्ष्य से बांधो”।

“यदि मानव जीवन को जीवित रखना है तो हमें बिलकुल नयी सोच की आवश्यकता होगी।”

“एक सफल आदमी बनने की कोशिश करने के बजाए आप एक ऐसे व्यक्ति बनने की कोशिश करें जो अपनी बात का पक्का हो|”

“दुनिया रहने के लिए बहुत ही ख़तरनाक जगह है; उन लोगों की वजह से नही जो बुरे हैं बल्कि उन लोगों की वजह से जो इस बारे में कुछ नहीं करते।”

“केवल दो ही चीजें असीमित(infinite) होती हैं और वे हैं ब्रह्माण्ड (universe) और इंसानी मूर्खता, और मुझे लगता है शायद पहली चीज की फिर भी कोई सीमा है|”

“यदि आप किसी कार्य को करने के सारे नियम जानते हैं, तो आप उस कार्य को किसी से भी बेहतर तरीके से कर सकते हैं।”

“सच्चा धर्म ही सच्ची जिंदगी है, अपनी पूरी आत्मा के साथ जीना, सारी अच्छाई और सारी उदारता ही सच्चा धर्म है।”

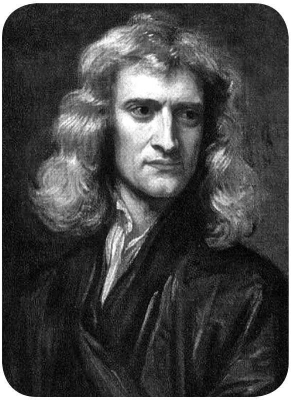
“शांति शक्ति के द्वारा नहीं रखी जा सकती है। यह केवल समझ से प्राप्त की जा सकती है।”

“धर्म के बिना विज्ञान लंगड़ा है और विज्ञान के बिना धर्म अंधा है।”

“जो व्यक्ति छोटी-छोटी चीजों को लेकर लापरवाह रहता है उस पर बड़े काम करने के लिए भरोसा नहीं किया जा सकता|”

“केवल वह जीवन जो दूसरों के लिया जिया जाता है एक उपयोगी जीवन होता है|”

आइज़क न्यूटन



दुनियाँ को पहली बार गुरुत्वाकर्षण का नियम समझाने वाला महान वैज्ञानिक

- आइज़क न्यूटन

सर न्यूटन एक महान वैज्ञानिक, एक कुशल गणितज्ञ, भविष्यदृष्टा और महान दार्शनिक थे। उनकी जीवनी पढ़कर हर कोई हैरान होता है कि एक ऐसा बच्चा जिसके पैदा होते ही उसकी कमज़ोर हालत को देखकर चिकित्सकों ने उसके शीघ्र ही मर जाने की भविष्यवाणी कर दी थी, जिसे स्कूल से मूर्ख समझकर निकाल भी दिया था वह आगे चलकर अपने अनुसंधानों से विश्व का कायाकल्प कर देगा। सन २००५ में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर वैज्ञानिकों के बीच हुए सर्वे ने यह साबित कर दिया की विश्व के सारे महान वैज्ञानिकों के बीच सर आइज़क न्यूटन का नाम सबसे अलग स्थान रखता है।

चाहे साहित्यिक यांत्रिकी के सिद्धांत हो या गुरुत्व और आकाशीय पिंडो के गति संबंधी नियम, चाहे प्रकाश परावर्तन संबधित प्रयोग हो या शीतलन का नियम, चाहे ध्वनि की गति को मापने का सवाल हो या गणित की पेचिदा समीकरणें और सूत्र, न्यूटन की वैज्ञानिक प्रतिभा सभी जगह महान सूर्य की तरह चमकती और विज्ञान प्रेमियों को मार्ग दिखाती रहती है। इस महान वैज्ञानिक संत की जीवनी हमें यह सिखाती है कि अगर आप में हिम्मत और कुछ करने का हौसला हो तो आपकी शारीरिक और मानसिक कमजोरियाँ भी आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकती। लगन के साथ अपने काम को करने वाला हर मुश्किल को पार कर अपना रास्ता खुद ही बना लेता है।

जन्म और प्रारंभिक वर्ष

सर आइज़क न्यूटन का जन्म यूरोप महाद्वीप के इंग्लैंड में लिंकनशायर क़स्बे के एक छोटे से गाँव वूल्सथॉर्प में हुआ था। २५ दिसंबर १६४२ को एक किसान परिवार में उनका जन्म हुआ। ७ माह की अवधि में ही जन्म ले लेने के कारण न्यूटन का शरीर बेहद कमज़ोर था और उनका वजन भी मात्र २५० ग्राम के आसपास था। ऐसी हालत में उनके बचने की किसी को भी आशा

नहीं थी। उनका जन्म भी उस समय हुआ जब उनके घर पर ३ माह पहले ही दुःखों का पहाड़ टूटा था, जन्म के ३ महीने पहले ही न्यूटन के पिता की मृत्यु हो चुकी थी। नन्हे न्यूटन को पिता का प्यार नहीं मिल पाया, उनकी माता का नाम हन्ना एस्कॉफ़ था। न्यूटन के पिता की असमय मृत्यु ने हन्ना को तोड़ दिया था, उन्हें न्यूटन के भविष्य की भी चिंता सता रही थी। कुछ समय बाद हन्ना के माता-पिता ने उन्हें सुझाव दिया कि आगे की जिन्दगी को देखते हुए उन्हें फिर से शादी कर लेनी चाहिये।

इस प्रकार हन्ना का विवाह अपनी उम्र से लगभग दुगुनी उम्र के एक धनी व्यक्ति रेवरेंड बनार्बस स्मिथ से हो गया। स्मिथ ने शादी के बाद न्यूटन को अपने घर ले जाने से इन्कार कर दिया। हन्ना ने सोचा था न्यूटन को इस शादी के बाद अपने नये पिता का प्यार मिल जायेगा लेकिन हुआ ठीक उलटा। स्मिथ केवल हन्ना को अपने साथ ले गया और नन्हे न्यूटन के सिर से माँ का भी साया उठ गया। अब वो अकेला अपनी नानी के पास ही रह गया। इन सब घटनाओं ने न्यूटन के कोमल मन पर गहरे आघात किये और वो दुनियाँ से कटा कटा रहने लगा। ७ वर्ष की उम्र तक तो वो ठीक से बोलना भी नहीं सीख पाया। जीवन के इस मज़ाक के कारण उसका स्वभाव भी गुस्सैल हो गया और उसकी उम्र के बाक़ी लड़के उसके दोस्त बनने की बजाय उससे दूर दूर ही रहने लगे।

प्रकृति से हुई दोस्ती

न्यूटन की नानी अपने साथ उसे भी खेतों पर ले जाती और छोटे मोटे काम करवाती ताकि उसका मन लगा रहे लेकिन न्यूटन अकेले रहना ही पसन्द करता था। हवाएँ चलने पर हिलती फ़सल को देखना, नीले आसमान में बादलों को निहारते रहना, सूरज, चाँद और सितारों की बारे में सोचते रहना ही उसे अच्छा लगता था। १० वर्ष की उम्र में न्यूटन पर एक बार फ़िर मुसीबत

आई, जब उसके सौतेले पिता स्मिथ की भी ७० साल की उम्र में मृत्यु हो गयी। उनकी माँ हन्ना तब तक ३ और बच्चों की माँ बन चुकी थी। पिता की मौत के बाद अपने तीनों बच्चों को लेकर हन्ना एक बार फ़िर वूल्सथॉर्प आ गयी और न्यूटन फ़िर से अपनी माँ के साथ रहने लगा।

१२ वर्ष की उम्र से १७ वर्ष का होने तक न्यूटन की पढ़ाई गाँव ही के 'द किंग्स स्कूल' में हुई। यहीं नन्हें न्यूटन का पहला परिचय लैटिन, ग्रीक और गणित से हुआ। अक्टूबर १६५९ के आसपास न्यूटन को एक कमज़ोर विद्यार्थी मानकर स्कूल ने निकाल दिया गया। हारकर उनकी माँ हन्ना ने उन्हें किसान बनाने का निर्णय लिया और वो उन्हें अपने साथ खेत पर ले जाने लगी। पर न्यूटन की खेतीबाड़ी में बिल्कुल रूचि नहीं थी।

किंग्स स्कूल के एक टीचर थे हेनरी स्टॉक्स, उन्होंने न्यूटन की माँ को समझाया कि वो एक बार फ़िर से न्यूटन को स्कूल भेजना शुरू करे। टीचर के कहने पर हन्ना ने न्यूटन को पुनः स्कूल भेजना शुरू कर दिया। कक्षा में न्यूटन किसी से ज़्यादा बात करना पसंद नहीं करते थे और उनके कोई विशेष दोस्त भी न थे। एक दिन किसी बात पर उनके कक्षा के कुछ छात्रों ने उनकी कमजोर पढ़ाई का बहुत मज़ाक उड़ाया। संवेदनशील न्यूटन को यह बात लग गयी और उन्होंने मन ही मन उन सभी को उत्तर देने की ठान ली। फिर क्या था न्यूटन पूरी मेहनत से पढ़ाई में जुट गए और देखते ही देखते वो कक्षा के अव्वल विद्यार्थी बन गए। अपने इन्हीं दिनों में न्यूटन ने सूर्य-घड़ी, पवनचक्की जैसे मॉडल बनाये जिसकी सब ने तारीफ़ की। अब तो उनकी एक अलग विद्यार्थी के रूप में पहचान बन चुकी थी।

ट्रिनिटी कॉलेज में प्रवेश

उनकी इस प्रतिभा को उनके चाचा विलियम ने पहचान लिया और उन्होंने हन्ना से न्यूटन को आगे की पढ़ाई ट्रिनिटी कॉलेज

में करवाने की बात कही। विलियम खुद भी ट्रिनिटी कॉलेज के छात्र रहे थे और उन्हें पूरा भरोसा था की न्यूटन की आगे की शिक्षा ट्रिनिटी में अच्छी तरह हो सकेंगी। अब समस्या आई वहाँ की फ़ीस की, न्यूटन के परिवार के पास इतने पैसे नहीं थे की वहाँ की पढ़ाई का ख़र्च उठा सके। लेकिन न्यूटन कब हार मानने वाले थे। उन्होंने कॉलेज से बचे हुए समय में अपने धनी सहपाठियों के घर काम करना शुरू कर दिया। ट्रिनिटी कॉलेज में उस समय रईसों का बोलबाला था, अतः कॉलेज में भी तीन वर्ग बने हुए थे। पहले वर्ग 'नोबेल मैन" में रईसों के बच्चे आते थे, उनकी पोशाक, खाना और बैठने के स्थान सब अलग थे। मध्यमवर्गीय परिवारों के बच्चों का दूसरा वर्ग था जिसे 'पैंशनर्स' कहा जाता था।

और तीसरे यानि सबसे आखरी ग्रुप को 'सीज़र' कहा जाता था जिनमें गरीबों के बच्चे पढ़ा करते थे। न्यूटन को भी इस ग्रुप में जाना पड़ा, अपने खाली समय में वे रईसों के घर काम करने, उनका कमरा साफ़ करने, कपड़े धोने और बाज़ार से सामान लाने का काम करते थे। इस काम के बदले में मिले पैसों से वे अपने फ़ीस और खाने-पीने की व्यवस्था देखते थे। लेकिन न्यूटन के पास तो जिन्दगी की शिकायत करने के लिए भी कोई नहीं था। उन्होंने अपने आप को किताबों के संसार में डुबो दिया। उस समय ट्रिनिटी कॉलेज में अरस्तु के सिद्धांतों पर आधारित पढ़ाई होती थी पर न्यूटन की रूचि तो नए वैज्ञानिकों जैसे गैलिलियो, कोपरनिकस और कैपलर के शोधों को पढ़ने में थी। न्यूटन के खोजी स्वभाव ने उन्हें प्रारम्भ से ही सत्य के प्रति अत्यंत आग्रही बना दिया था। इसी के चलते उन्होंने अपनी कॉपी में एक नोट लिखा की- "प्लेटों और अरस्तु मेरे मित्र है, लेकिन मेरा सबसे अच्छा मित्र तो 'सत्य' है।

गणित में रूचि और अनुसंधान

अपने कॉलेज के दिनों में गणित में न्यूटन की रूचि और भी अधिक ग़हरी हो गयी। अब वे अपना ख़ाली समय कॉलेज के पुस्तकालयों को खंगालते हुए बिताते थे और वर्ष १६६५ में ही उन्होंने 'द्विपद प्रमेय' (Binomial Theorem) को खोज निकाला जो आगे चलकर "कैलकुलस थ्योरी" के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

आगे के साल

इन्ही दिनों जब न्यूटन ने अपनी बी.ए. की डिग्री पूरी की ही थी, अगस्त १६६५ के दौरान पुरे इंग्लैंड में भयंकर प्लेग की महामारी फ़ैल गयी। चारों और मौत का तांडव था और किसी को प्लेग का कारण नहीं समझ आ रहा था। ऐसे में सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय को कुछ समय के लिए बंद करना पड़ा और न्यूटन एक बार फ़िर अपने गाँव वूल्सथॉर्प आ गये।

लेकिन अपने घर पर वो खाली नहीं बैठे, २ वर्ष की इस अवधी में न्यूटन ने अपने सिद्धांतों पर गंभीर शोध की। न्यूटन ने गणना की के गणितीय विधि "Calculus" के लिए आधारशिला रखी थी जिसने जटिल सभी कारणों को हल करने में वैज्ञानिको की क्षमता में क्रांति ला दी थी | और इसी बीच वो महान घटना घटी जिसने उनका नाम इतिहास में सदा सदा के लिए अमर कर दिया।

सेब की कहानी

हालाँकि अनेक विद्वान सेब की प्रसिद्द कहानी को न्यूटन द्वारा किया गया एक हल्काफुल्का मज़ाक मानते है लेकिन सच जो भी हो न्यूटन खुद इस कहानी को कई बार कहते हुए सुने गए। कहानी के अनुसार एक बार जब न्यूटन एक सेब के पेड़ के नीचें बैठकर कुछ विचारों में उलझे हुए थे, पेड़ पर से एक सेब टूटकर

उनके सिर पर आ गिरा। इस घटना ने मानो न्यूटन का ध्यान एक नए तथ्य की और खींचा, उन्होंने सोचा -

* यह सेब ऊपर से नीचें ही क्यों गिरा?
* कौन से ताक़त थी जो सेब को नीचें खींच रही थी?
* अगर ऐसी कोई ताक़त इस सेब को नीचें खींच सकती है तो चन्द्रमा और तारों को नीचें क्यों नहीं खिंचती?
* ये सेब सीधी रेखा में ही नीचें क्यों गिरा?

'क्यों' 'क्यों' .... 'क्यों'? अब तो रात दिन उनके सामने ये सवाल तैरते रहते। धीरे धीरे न्यूटन को समझ आने लगा की पृथ्वी में अपनी कोई आकर्षण शक्ति है, जो प्रत्येक वस्तु को धरती के केंद्र की और खिंचती है। उन्हें यह भी विचार आया की धरती के अलावा अन्य ग्रहों पर भी यह आकर्षण शक्ति हो सकती है। इस तरह गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत की नींव डल चुकी थी लेकिन न्यूटन अपने इस सिद्वांत को पूरी तरह सच साबित होने के बाद ही दुनियाँ को बताना चाहते थे इसलिए उन्होंने इस बात को कुछ सालों तक राज़ ही रखा।

इसी अवधि में उनकी दूसरी महत्वपूर्ण खोज थी प्रकाश किरणों में उपस्थित रंगो का आकलन किया जिसे प्रिज़्म-थ्योरी भी कहते है। उन्होंने अपने अनुसंधान के द्वारा पाया की प्रकाश की किरणें जो आमतौर पर सफ़ेद नज़र आती है वह वास्तव में ७ रंगों के मेल से बनी होती है। ये रंग है बैंगनी, जामुनी, नीला, हरा, पीला, नारंगी और लाल।

कैम्ब्रिज में वापसी और आगे का सफर

१९६७ में विश्वविद्यालय एक बार पुनः शुरू हो गया और इसी साल अप्रेल के महीने में न्यूटन भी वापस आ गये। पिछले दो सालों में खोजे गए रहस्यों को लेकर वे काफ़ी उत्साहित थे और विश्वविद्यालय में एक बार फिर वो किताबों में डूब गए। यहाँ

उन्होंने एम.ए. के पाठ्यक्रम में प्रवेश लिया। पढ़ाई के इन्ही दिनों में वे ल्यूकेशियन प्रोफ़ेसर आइज़क बैरो के निकट आये। बैरो भी न्यूटन की प्रतिभा और लगन से प्रभावित थे। उन्होंने न्यूटन को गणित की तरफ और अधिक प्रोत्साहित किया। १६६८ में न्यूटन ने अपना एम.ए. भी पास कर लिया और अब वे विश्वविद्यालय में सीनियर फ़ेलो बन चुके थे।

सन १६७२ में न्यूटन को रॉयल सोसायटी का फ़ेलो चुन लिया गया। रॉयल सोसायटी के समक्ष न्यूटन ने पहली बार अपने द्वारा बनाया गया टेलिस्कोप प्रदर्शित किया जो गैलीलियो के बनाये टेलिस्कोप से कई गुना अधिक शक्तिशाली और सटीक था। यहाँ रहते हुए न्यूटन ने अपने पुराने शोधों को प्रकाशित करना शुरू किया, लेकिन यहाँ के सदस्यों से उनकी अक्सर छोटी मोटी बहसें चलती रहती थी।

यांत्रिकी और गुरुत्वाकर्षण पर कार्य

१९६७ में न्यूटन ने ग्रहों के गति के केपलर के नियमों को आधार बनाते हुए एक बार फिर गुरुत्वाकर्षण और यांत्रिकी पर काम शुरू कर दिया। ५ जुलाई १६८७ को उस समय के प्रसिद्ध पत्र फिलोसोफी नेचुरेलिस प्रिन्सिपिया मेथेमेटिका (जिसे अब प्रिन्सिपिया के रूप में जाना जाता है) में न्यूटन के द्वारा खोजे गए गति के तीन नियम प्रकाशित हुए। इन नियमों से जैसे विज्ञान जगत में नए युग की शुरुआत कर दी। न्यूटन का नाम पुरे विश्व में एक महान वैज्ञानिक के रूप में मशहूर हो गया।

दिमागी अवसाद का वर्ष

इन सब अच्छी बातों के बीच सन १६९२-९३ में न्यूटन नर्वस ब्रेकडाउन अर्थात दिमाग़ी असंतुलन का शिकार हो गए। लोगों ने इसके पीछे उनकी १०-१२ घण्टों की लगातार मेहनत, खानपान की उपेक्षा और यहाँ तक की जीवनभर शादी न करने के फैसले

को भी माना। लेकिन न्यूटन के प्रबल इच्छाशक्ति के धनी थे और वे शीघ्र की इस अवसाद से बाहर निकल आए।

आगे का समय

अपने विज्ञान और गणित के कार्यो की वजह से न्यूटन अब समाज और शासन दोनों के लोक्रप्रिय बन चुके थे । सन १६९६ में उन्हें राजकोष के तत्कालीन कुलाधिपति से शाही टकसाल के वार्डन का पद मिला। यह पद एक महत्वपूर्ण सम्मान था और वहाँ के प्रमुख मास्टर लुकास के अधीन न्यूटन अपना काम कर रहे थे। बाद के वर्षों मैं लुकास की मौत के बाद न्यूटन ने ही शाही टकसाल के सबसे प्रसिद्ध मास्टर(प्रमुख) के पद पर जीवन के आख़िरी समय तक काम किया। यहाँ भी न्यूटन ने अपने कामों को पूरी मेहनत और गंभीरता से निभाया; उन्होंने सबसे पहले शाही मुद्रा में सुधार लाने का काम किया।

उन्होंने स्टर्लिंग पौण्ड को चाँदी के मानक से बदल कर सोने के साथ जोड़ दिया और आपस में सोने तथा चाँदी के विनिमय की दरें भी तय की। साथ ही साथ उन्होंने नकली मुद्रा बनाने वालों पर भी सख़्ती बढ़ा दी। अप्रैल १७०५ में क्वीन ऐनी ने न्यूटन को ट्रिनिटी कॉलेज, कैम्ब्रिज में एक शाही यात्रा के दौरान नाइट की उपाधि दी। यह उस समय इंग्लैंड का सर्वोच्च सम्मान माना जाता था। न्यूटन के जीवन में सम्मानों और पुरस्कारों का आना लगा ही रहता था पर सभी को एक बात मालूम थी की उन्हें जो भी मिला है वे सच में उसके पात्र थे।

आखरी समय

वैसे तो बचपन से न्यूटन धार्मिक प्रवृत्ति के इंसान थे और बाईबल का गूढ़ चितंन, मनन और अपने भावों का लेखन भी उनका प्रिय कार्य हुआ करता था। लेकिन वे जीवन के इन

अंतिम वर्षों में कुछ अधिक अंतर्मुखी हो गए थे। शरीर की परवाह न करते हुए लगातार मेहनत करते रहने की वज़ह से उन्हें गठिया और गुर्दे में पथरी भी हो गयी थी। देर रात तक काम करते रहने से वे अनिद्रा के शिकार भी हो चले थे और वर्ष १७२७ के शुरुआत से ही वे गंभीर रूप से बीमार हो गए थे। २० मार्च १७२७ को इस महान वैज्ञानिक ने अपनी आखरी साँस ली। विश्व ने उनके रूप में एक महान वैज्ञानिक और उच्च कोटि का विचारक पाया था।

सर आइज़क न्यूटन के कुछ प्रेरक वचन

- "मैं आकाशीय पिंडों की गति की गणना कर सकता हूँ, लेकिन लोगों के पागलपन की नही।"
- "त्रुटियाँ कला में नहीं बल्कि कलाकार में होती है।"
- "यदि मैंने लोगों की कोई सेवा की है, तो यह मेरे स्थिर सोच की वजह से है।"
- "मेरे लिए सांसारिक सम्मान या गौरव का एक उच्च स्रोत, कभी भी विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति से अधिक नहीं रहा है।"
- "सत्य हमेशा सादगी में पाया जाता है न कि बहुत चीजों और भ्रम की स्थिति में।"
- "मैं नहीं जानता कि संसार के लिए मैं क्या हूँ, लेकिन मेरी नजर में, मैं अपने आप को समुद्र के किनारे खेल रहे उस बच्चे की तरह मानता हूँ, जो चिकने पत्थर एंव सुंदर सीपियां खोजने में लीन है। जबकि सामने सत्य का अबूझ अनसुलझा महासागर अब भी फैला हुआ है।"
- "मेरी शक्तियाँ बहुत साधारण है, मेरी सफलता का राज है- सतत अभ्यास।"

- “कोई भी बड़ी खोज, एक साहसी कल्पना के बिना नहीं की जा सकती।”
- “अनुसंधानो की संख्या से ज्यादा उनकी उपयोगिता के आधार पर वैज्ञानिक का सम्मान किया जाना चाहिये।”

एक अनजाना सत्य

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा की दुनियाँ भर में जहाँ न्यूटन को गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत का प्रणेता कहा जाता है, वहीँ एक तथ्य यह भी है की न्यूटन से क़रीब ५०० साल पहले से ही भारत को इस सिद्धांत की जानकारी थी। भारत के प्रसिद्ध वैज्ञानिक और खगोलविद भास्कराचार्य का या भास्कर द्वितीय जिनका जन्म १११४ ईस्वी में विज्जडविड नामक गाँव में हुआ था जो सहयाद्रि पहाड़ियों में स्थित हैं।

भास्कर को अवकल गणित का संस्थापक कह सकते हैं। उन्होंने इसकी अवधारणा आइज़ैक न्यूटन और गोटफ्राइड लैब्नीज से कई शताब्दीयों पहले की थी। ये दोनों पश्चिम में इस विषय के संस्थापक माने जाते हैं। जिसे आज अवकल गुणांक और रोल्स का प्रमेय कहते हैं।

भास्कराचार्य की पुत्री का नाम लीलावती था और वह भी पिता की ही तरह वैज्ञानिक चिंतन करने वाली लड़की थी। एक बार उसने अपने पिता को पूछा - “पिताजी यह पृथ्वी किस पर टिकी है?”

भास्कराचार्य ने अपनी पुत्री लीलावती के एक प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया है -

आकृष्टिशक्तिश्च मही तया यत् खस्थं
गुरुस्वाभिमुखं स्वशक्तत्या।
आकृष्यते तत्पततीव भाति
समेसमन्तात् क्व पतत्वियं खे।।

(सिद्धांत शिरोमणी ग्रन्थ)

अर्थात् पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है। पृथ्वी अपनी आकर्षण शक्ति से भारी पदार्थों को अपनी ओर खींचती है और आकर्षण के कारण वह जमीन पर गिरते हैं। पर जब आकाश में समान ताकत चारों ओर से लगे, तो कोई कैसे गिरे? अर्थात् आकाश में ग्रह निरावलम्ब रहते हैं क्योंकि विविध ग्रहों की गुरुत्व शक्तियाँ संतुलन बनाए रखती हैं।

यह तथ्य इस बात का प्रमाण है कि भारत विज्ञान के क्षेत्र में भी विश्व के अन्य देशों से बहुत आगे था। परंतु गुलामी के लंबे काल में हमारी वैज्ञानिक प्रतिभा विश्व के सामने सही समय पर आ नहीं सकी।

मैडम मेरी क्यूरी



विज्ञान की सेवा में अपना जीवन न्यौछावर कर देने वाली निडर और महान महिला वैज्ञानिक

- मैडम मेरी क्यूरी

लोग कई बार सोचते होंगे की जिन व्यक्तियों को नोबेल पुरस्कार मिला उनका जीवन धन्य हो गया, मगर मैरी क्यूरी की जीवनी पढने के बाद लगता है नोबेल पुरस्कार धन्य हो गया की वो उनके जैसी महान महिला को मिला। निडर, जुझारू और विज्ञान की खातिर अपना जीवन तक दाँव पर लगा देने वाली इस महान वैज्ञानिक के बारे में इतना ही कहा जा सकता है की उनके व्यक्तित्व की ऊँचाई हिमालय के शिखरों से कम नहीं। विश्व की प्रथम महिला जिसे नोबेल पुरस्कार मिला और साथ ही उनका परिवार विश्व का एक मात्र परिवार है, जिसके सारे सदस्यों को नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। मानवता और विश्व की भलाई को अपनी व्यक्तिगत आवश्यक्ताओं से हमेशा आगे रखने वाली इस महिला वैज्ञानिक का जीवन पुरे विश्व के विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए प्रेरणा का एक महान स्त्रोत है।

प्रारंभिक वर्ष

वो ७ नवम्बर १८६७ का दिन था जब पोलैंड के वारसा शहर में मैरी क्यूरी का जन्म हुआ। वारसा पोलैंड का सबसे बड़ा शहर और उसकी राजधानी भी है। अनेकों राजमहलों और गिरिजाघरों को अपने में समेटे इस शहर में उस दिन जिस लड़की का जन्म हुआ किसे पता था की आने वाले दिनों में वह विश्व के हर विज्ञान प्रेमी और विद्यार्थी, ख़ासकर महिलाओं के लिए प्रेरणा की अमिट छाप छोड़ेगी। उनका पूरा नाम मैरी स्क्लाडोवका क्यूरी था और उनका परिवार एक उच्च शिक्षित परिवारों में गिना जाता था। मैरी अपने भाई-बहनों में ५ वे नंबर की संतान थी। माँ अध्यापिका तथा पिता प्रोफेसर थे। माता-पिता की शिक्षाओं का असर मैरी क्युरी पर भी पड़ा। वे बचपन से ही पढ़ाई लिखाई में तेज थीं। माता पिता के प्रोत्साहन तथा पढ़ाई में रूचि के कारण वे सभी प्रारंभिक कक्षाओं में अव्वल रहीं।

परंतु बचपन में ही घर की तंग आर्थिक स्थिति के कारण उन्हे अपनी बहन के पास पढने के लिए पेरिस जाना पड़ा।

मैरी के पिता एक उसूलपसंद और देशभक्त इंसान थे एवं उस समय के शासन की गलत नीतियों का विरोध करने के कारण उन्हें काफ़ी अत्याचार झेलने पड़े, लेकिन वह पीछे नहीं हटे। मैरी जब १० वर्ष की थी उनकी माँ की एक बीमारी में मौत हो गयी और कुछ ही समय बाद उनकी सबसे बड़ी बहन भी गुज़र गयी।

परिवार की आर्थिक स्थिति भी बहुत ख़राब हो गयी थी। इन सब बातों ने मैरी को अंदर से हिला दिया था। मैरी पढ़ाई में अत्यंत होशियार थी और उनकी हमेशा कोशिश होती थी की वह अधिक से अधिक अंक लाकर छात्रवृत्ति हासिल करे और अपनी पढ़ाई का बोझ अपने परिवार न डाले। मैरी ने स्नातक की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की परन्तु उस समय उनके शहर के विश्वविद्यालय में आगे की पढ़ाई करना लड़कियों के लिए मना था इसलिए उन्होंने अपनी बहन की सहायता से पैरिस के कॉलेज में पढ़ने का निश्चय किया। मैरी के पिता भी यह चाहते थे लेकिन उनके पास कॉलेज की फीस भरने के पैसे नहीं थी अतः मैरी ने निर्णय लिया की वह वारसा में रहकर कुछ दिन बच्चों को ट्यूशन पढ़ायेगी और पैसों का इंतज़ाम करेगी। पिता अपनी स्वाभिमानी बेटी के निर्णय से बड़ा गर्व अनुभव कर रहे थे।

युवा मैरी की पहली बड़ी सफलता

जब मेरी के पास पर्याप्त पैसे हो गए तब उन्होंने पैरिस के विश्वविद्यालय में डॉक्टरी की पढ़ाई हेतु प्रवेश लिया और वहाँ भी सभी के बीच सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करते हुए Ph.D. की डिग्री प्राप्त की। इस डिग्री को पाने वाली अपने विश्वविद्यालय की वे पहली महिला छात्र थी। बाद में पैरिस विश्वविद्यालय के भौतिक विभाग में वे वहाँ की पहली महिला प्रोफ़ेसर भी बनी।

पियरे क्यूरी के सम्पर्क में

१८९३ में मैरी को भौतिक विज्ञान में डिग्री मिली और उन्होंने प्रोफेसर गैब्रिएल के प्रयोगशाला में काम शुरू कर दिया। अपने काम के साथ साथ मैरी ने पेरिस विश्वविद्यालय में अपनी आगे की पढ़ाई भी जारी रखी। इन्हीं दिनों मैरी की मुलाकात पियरे नाम के नवयुवक से हुई जो की अत्यंत होशियार और मैरी की ही तरह वैज्ञानिक अनुसंधान में रूचि रखते थे। उन्होंने मैरी को अपनी प्रयोगशाला में काम करने के लिए स्थान दे दिया। इस तरह दोनों की मुलाकातों और विज्ञान के प्रति लगाव ने उन्हें एक दूसरे को जानने में बहुत मदद की, अन्ततः २६ जुलाई १८९५ को मैरी एवं पियरे ने शादी कर ली । पियरे ने इसी साल में 'चुम्बकत्व' विषय पर अपना शोधकार्य पूरा किया और Ph.Dकी डिग्री प्राप्त की। उन्हें बाद में विश्वविद्यालय में ही सहायक प्रोफेसर के रूप में पदोन्नति मिली।

शोध का स्वप्न और चुनौतियाँ

पियरे के रूप में मैरी को एक जीवनसाथी, महान वैज्ञानिक और ऐसा मित्र मिला जिसने मैरी को अपने शोधकार्यो में अच्छा करने के लिए हमेशा प्रोत्साहन दिया और हरसंभव मदद की। मैरी अपने शोध के लिए कोई ऐसा विषय ढूंढ रही थी जिसपर अब तक कोई विशेष काम न हुआ हो। सन १८९५ में जर्मन/डच वैज्ञानिक विलियम रंटज़न ने एक्स-रे (क्ष-किरणों) का पता लगाया। इन किरणों की खोज ने मानव शरीर में त्वचा और मांसपेशियों के अंदर छुपी हड्डियों का चित्र लेने में बहुत मदद की लेकिन इन किरणों की उत्पति का स्त्रोत अभी तक अंजान था। फिर १८९६ में फ़्रांस के ही एक और महान वैज्ञानिक हैनरी बैकरले ने यूरेनियम धातु से विशेष प्रकार की अदृश्य किरणे निकलने की पुष्टि की जो कि बाद में रेडियोधर्मिता (रेडियोएक्टिविटी) की बुनियाद बनी।

जैसे ही मैरी ने इस बारे में सुना उन्होंने निश्चय कर लिया कि यूरेनियम किरणे ही अब उनके आगे के शोध विषय बनेंगी। लेकिन मैरी के शोध की राह इतनी आसान नहीं थी, क्योंकि इस विषय पर पढ़ने और सन्दर्भ लेने के लिए न तो विशेष किताबें थी और न नहीं विश्वविद्यालय में कोई वरिष्ठ शिक्षक। इन सबसे आगे एक और बड़ी कठिनाई थी इस विषय पर आगे को खोज करने करने के लिए आवश्यक प्रयोगशाला, उपकरण और धनराशी कैसे जुटाई जाये ?

अनजाने की खोज

इतनी सारी कठिनाइयों, घरेलु जिम्मेदारियों और आर्थिक तंगी से घिरा और कोई व्यक्ति अगर होता तो वो कब का हार मान चुका होता, लेकिन मैरी उनमे से नहीं थी। सारी दिक्कतों के बावजूद वे इस कार्य के लिए अटल थी, उन्होंने विश्वविद्यालय से इस शोध के लिए विशेष स्थान माँगा परंतु स्थान के नाम पर उन्हें अंधरे और सीलन से भरा सिकुड़ा सा रद्दी रखने का कमरा दे दिया गया। गर्मियों के दिनों में बेहद गर्म और चिपचिपा और ठण्ड में खून जमा देने वाला सर्द कमरा, लेकिन मैरी फिर भी प्रसन्न थी क्योंकि उन्हें तो अपने लक्ष्य की चिंता अधिक थी।

मैरी, अब इसी कमरे रूपी प्रयोगशाला में अपना अधिक से अधिक वक़्त यूरेनियम धातु के परीक्षण में गुज़ारने लगी, यूरेनियम के रेडियोधर्मिता के साथ साथ उन्होंने अब तक ज्ञात सभी मूल तत्वों के एक बार फिर से रेडियोधर्मिता के परिक्षण की बात सोची क्योकि उन्हें लगा की शायद अन्य तत्वों में भी यह गुण विद्यमान हो। मैरी एक ऐसी धातु की खोज मे थी जिसमे रेडियोधर्मिता अब तक खोजे गए सभी तत्वों से ज्यादा हो क्योकि यूरेनियम से ज्यादा थोरियम के अंदर रेडियोधर्मिता पाई गई । आगे का काम अत्यंत महत्वपूर्ण और संवेदनशील था

इसलिए पियरे क्यूरी भी अपने अनुसंधानों को छोड़कर अपनी पत्नी मैरी की मदद करने लगे।

रेडियम का जन्म

अपने गहन अनुसंधान के कारण क्यूरी दंपति को जुलाई १८९८ में अब तक खोजे गए तत्वों में सबसे अधिक रेडियोधर्मिता वाले तत्व का पता चला जिसे मैरी ने अपने देश पोलैंड के नाम पर 'पोलोनियम' का नाम दिया लेकिन इसके बाद भी उनकी चुनौती थी पोलोनियम में भी छुपे हुए उस द्वितीय तत्व का पता लगाना जो की अत्यन्त प्रभावी रूप से रेडियोधर्मी है। आखिरकार २६ दिसंबर १८९८ को क्यूरी दम्पति ने उस तत्व की खोज कर ही ली जो अब तक ज्ञात सभी तत्वों में सबसे अधिक रेडियोधर्मी विकिरण छोड़ता था, इसे नाम दिया गया 'रेडियम' जिसका मूल लेटिन भाषा का शब्द 'रे' अर्थात किरण है। अपने आगे के कुछ वर्षों में वे रेडियम को विशुद्ध रूप से अलग करने और उसके उत्पादन के ऊपर काम करते रहे। सन १९०२ में क्यूरी दंपत्ति ने लगभग एक टन पिचब्लेंड प्लेटों को शोधित करके एक ग्राम के दसवें हिस्से के बराबर रेडियम क्लोराइड को अलग कर लिया।

क्रांति की शुरुआत

रेडियम, यूरेनियम से २० लाख गुना ज्यादा शक्तिशाली होता है। इस चमकते तत्व 'रेडियम' के मिल जाने से उसके वैज्ञानिक, औद्योगिक और स्वास्थ्य क्षेत्र में उपयोग का रास्ता खुल गया। वैज्ञानिकों ने देखा की रेडियम के केंद्र में न्यूट्रॉन और प्रोटॉन दो तरह के कण जुड़े हुए रहते है। रेडियम के केंद्र से जो किरणें निकलती है वे तीन किरणों से मिलकर बनी होती है जिनकों अल्फा, बीटा और गामा का नाम दिया गया।

परमाणुओं के विखण्डन पर काम करके अब वैज्ञानिक परमाणु ऊर्जा के उत्पादन तक पहुँच चुके है और रेडियम का

उपयोग शरीर की घातक बिमारियों जैसे कैंसर कोशिकाओं को नष्ट करने तक में किया जा रहा है।

क्यूरी दम्पति ने अपने निश्चय के अनुरूप ही इस खोज का सर्वाधिकार अपने पास न रखते हुए पुरे विश्व के लिए मुक्त कर दिया। उनका विचार था कि मनुष्य के महान कार्य और उसकी उपलब्धियाँ, खुद के लिए पैसों के खज़ाने जुटाने के लिए नहीं बल्कि विश्व और मानवता के दु:खो को दूर करने के लिए होनी चाहिए।

नोबेल पुरस्कार

दिसंबर १९०३ को पियरे और मैरी क्यूरी तथा हैनरी बैकरले को सयुंक्त रूप से भौतिकी के क्षेत्र में नोबेल पुरस्कार दिया गया। यह सम्मान उन्हें रेडियोधर्मी विकिरण के सिद्धांत पर अत्यंत महत्वपूर्ण शोध करने के कारण दिया गया।

आगे की चुनोतियाँ और हिम्मत

१९ अप्रैल १९०६ का दिन मैरी की जिंदगी में एक और मुसीबत ले आया। इस समय मैरी को अपने शोध कार्य को आगे बढ़ाने में विशेष समय देना पड़ रहा था और उसमे उनके पति पियरे उनका हर कदम पर साथ दे रहे थे। पियरे का सपना था की वे आगे चलकर भौतिक विज्ञान पर शोध करने के लिए एक अत्याधुनिक प्रयोगशाला खोले जहाँ सारे साधन उपलब्ध हो और देश विदेश में विद्यार्थी वहाँ शोध कर सके। लेकिन इसी बीच १६ अप्रेल १९०६ को पियरे का सड़क दुर्घटना में निधन हो गया और मैरी पर पुरे परिवार की ज़िम्मेदारी और विज्ञान में आगे के शोध का बोझ आ गया।

इस घटना से मैरी बुरी तरह टूट गयी थी पर एक बार फिर उन्होंने अपने खोये हुए हौसलें को इकठ्ठा किया। उन्होंने अकेले ही अपनी दोनों बच्चियों को पढ़ाने का और साथ ही साथ अपने शोध

को जारी रखने का निर्णय किया। एक शानदार सैनिक की भाँति मैरी ने अपनी हिम्मत के बल पर क़िस्मत को झुकने के लिए मज़बूर कर दिया। मैरी की मेहनत रंग लायी और आगे चलकर उनकी दोनों बेटियों ने भी नोबेल पुरस्कार प्राप्त किया। बडी बेटी आइरीन को १९३५ में रसायन विज्ञान में नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ तो छोटी बेटी ईव को १९६५ में शांति के लिए नोबेल पुरस्कार मिला।

पियरे के सपने को भी साकार करते हुए १९२५ में मैरी ने वारसा में क़्यूरी इंस्टिट्यूट की नींव रखी जो आज एक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का शोधसंस्थान और हॉस्पिटल है।

अन्तिम समय

वर्षों के अथक परिश्रम और दबाव ने मैरी के शरीर को बहुत थका दिया था। लगातार प्रयोगशाला में काम करते रहने के कारण उनकी दृष्टि भी लगभग ख़त्म हो रही थी। लेकिन मैरी अपने अब तक के अपने अनुभव और अनुसंधान का सार आगे आने वाली पीढ़ी तक पहुँचाना चाहती थी। सन १९३४ तक उन्होंने अपनी वह क़िताब भी पूरी कर ली और उसे नाम दिया 'रेडियोएक्टिविटी'।

इतने वर्षों से जिस रेडियम पर उन्होंने काम किया था उसके रेडियोधर्मी विकिरणों ने मेरी के शरीर को बुरी तरह क्षतिग्रस्त कर दिया था। उनके शरीर के अंगो और नसों में रेडियम विकिरणों ने जहर भर दिया था और इसी के चलते ४ जुलाई १९३४ को विश्व के इस महान वैज्ञानिक महिला 'मैरी क़्यूरी' का निधन हो गया।

महान व्यक्तित्व

मैरी क़्यूरी का जीवन स्वयं में शिक्षाओं की एक क़िताब के समान है। रेडियम और रेडियोएक्टिविटी पर उनके द्वारा किये गये कार्यो ने १९ वीं और २० वीं सदी के अनेकों आविष्कारों को

सहयोग दिया। वे एक स्वाभिमानी और ईमानदार महिला थी, १८९३ में उन्हें जो छात्रवृत्ति मिलती थी उसे उन्होंने १८९७ में खुद ही यह कहकर लौटा दिया की अब वे खुद काम करके कमा रही है अतः अब उन्हें इसकी जरूरत नहीं। अपने पहले नोबेल पुरस्कार से प्राप्त राशि को भी उन्होंने अपने दोस्तों, रिश्तेदारों और विद्यार्थियों में बाँट दिया ताकि वे अपना शोध और अच्छी तरह कर सके।

उन्होंने, रेडियम अलग करने के विधि जो की उन्होंने और पियरे ने व्यक्तिगत रूप से खोजी थी उसे भी पेटेंट नहीं करवाया और एक बहुत मोटी कमाई के लालच से खुद को सिर्फ इसलिए दूर रखा क्योंकि विश्व के तमाम वैज्ञानिक उनकी खोज से बिना किसी बाधा के लाभ ले सके। उन्होंने अधिकतर सम्मान और पुरस्कारों को उन संस्थानों में दे दिया जिससे वे जुड़ी थी।

अल्बर्ट आइंस्टीन ने एक बार उनके बारे में कहा था कि - "उनकी जानकारी में वो एक अकेली ऐसी महिला थी जो की प्रसिद्धी की चकाचौधंसे दूषित नहीं हुई थी।"

पुरस्कार, सम्मान और श्रद्धांजलि

सन २००९ में प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्रिका 'न्यू साइंटिस्ट' के द्वारा करवाये गए सर्वेक्षण के अनुसार मैरी क़्यूरी 'विज्ञान जगत की सबसे प्रभावशाली और प्रेरक महिला' चुनी गयी। पौलेण्ड और फ़्रांस ने उनके सम्मान में सन २०११ को 'मैरी क़्यूरी वर्ष' घोषित किया और संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी सन २०११ को 'अन्तर्राष्ट्रीय रसायन विज्ञान वर्ष' घोषित किया था।

उन्हें प्राप्त कुछ विशेष सम्मान और पुरस्कार इस प्रकार है-

* सन १९०३ में भौतिकी के क्षेत्र में संयुक्त नोबेल पुरस्कार
* सन १९०३ में ही संयुक्त डेव मैडल (Davy Medal)
* सन १९०४ में माट्युची मैडल (Matteucci Medal)

* सन १९०७ में एक्टोनियन पुरस्कार (Actonian Prize)
* सन १९०९ में एलियट क्रेसन मैडल (Elliott Cresson Medal)
* सन १९११ में रसायन विज्ञान में नोबेल पुरस्कार
* सन १९२१ में फ्रैंकलिन मैडल (Franklin Medal)

उनके जीवन पर सन १९३४ में 'मैरी क़्यूरी' नाम से एक फ़िल्म भी बनी जिसे ऑस्कर पुरस्कार के दावेदारों के रूप में भी चुना गया था।

मैरी क्यूरी के कुछ प्रेरक वचन

- "आगे बढ़ने का रास्ता न ही आसान होता है और न छोटा, पर नतीजे अच्छे मिलते हैं।"
- "किसी भी चीज़ को अच्छी तरह गहराई से आप तभी समझ पाएंगे जब आपके पास पूरी स्वतंत्रता हो।"
- "ऐसे लोगों की तरह बने, जिन्हें दूसरों की मदद करने से या किसी के प्रति स्नेह की भावना रखने से ज्यादा खुशी मिलती है। इसकी तुलना किसी दूसरी चीज़ से नहीं की जा सकती है।"
- "लोगों में सुधार लाए बिना, सुनहरे भविष्य की कामना करना बिल्कुल गलत है। ऐसा तभी मुमकिन होगा जब हर व्यक्ति खुद को बदलने की कोशिश करें। इसी के साथ वह अपनी जिम्मेदारियों को भी समझे।"
- उन लोगों के जैसा बनने कि कोशिश करें जो सोचते हैं कि सीखने से ज्यादा खुबसूरत कुछ भी नहीं हैं।
- "किसी भी व्यक्ति के लिए जीवन आसान नहीं है। फिर क्या किया जाए? इससे बाहर निकलने का एक ही रास्ता है, खुद पर विश्वास रखिए। हर व्यक्ति के पास कोई

न कोई खास हुनर है, और उन्हें उस हुनर को बनाए रखना है।"

- "जीवन में ऐसे कई लोगों से मिलने का मौका मिलेगा जो गलतियाँ ढूंढनें में लगे रहते हैं, लेकिन सच्चाई को जानने की कोशिश नहीं करते हैं ऐसे लोगो से जितना दूर रहे उतना अच्छा हैं।"
- "कोई नया काम या किसी नई चीज की खोज यह सोचकर मत करिए कि इससे कोई फायदा होगा की नहीं, आप सिर्फ खोज करिए। अच्छी खोज दूसरों की भलाई के काम आ जाती है।"
- "उन लोगों में से एक बने जिन्हें कर्म में ही सुंदरता दिखती है। जैसे मुझे साइंस से ज्यादा खूबसूरत कुछ नहीं लगता है।"
- "जिन लोगो ने अपने जीवन में कुछ न कुछ महत्वपूर्ण काम किया है वे सिर्फ़ काम में विश्वास रखते है लोगो में नहीं।"
- "जिंदगी में सफल होने के लिए न तो यह जानने में ज्यादा उत्सुक हों कि दूसरे क्या सोच रहे हैं, न ही चीज़ों में रुचि दिखाएं, लेकिन नए आइडिया या किसी नए विचार की खोज करिए। कुछ नया करने से ही आगे बढ़ने का रास्ता बनेगा और प्रसिद्धि भी मिलेगी।"

आओ करे एक वैज्ञानिक समाज का निर्माण।

भारत के १४वे प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने फ़रवरी २०१७ को भारतीय अंतरिक्ष संस्थान 'इसरो' के वैज्ञानिक सम्मेलन में बोलते हुआ कहा कि हमारे देश के युवाओं में विज्ञान का व्यापक प्रचार होना चाहिए। देश में कुशल वैज्ञानिकों की बहुत ज़रुरत है। इसके पूर्व भी हमारे देश के सर्वाधिक लोकप्रिय राष्ट्रपति डॉ कलाम ने बच्चों के बीच विज्ञान के प्रचार प्रसार हेतु विशेष प्रयास किये, देश का नेतृत्व करते हुए पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी ने भी शास्त्री जी के नारे "जय-जवान, जय किसान" के साथ 'जय विज्ञान' को भी जोड़ दिया।

यह बात सभी मानते है की अगर देश को उन्नति के रास्ते पर आगे बढ़ना है तो उसे बड़े पैमाने पर वैज्ञानिक चाहिए, इसलिए हमारे सामने चुनौती है की वैज्ञानिकों का निर्माण किस प्रकार संभव हो। यह अध्याय विशेष रूप से हमारे देश के अनेकों स्कूलों में पढ़ रहे करोड़ों बच्चों के लिए लिखा गया है; जिन पर देश की आशा टिकी है। आवश्यक नहीं कि देश का प्रत्येक बच्चा वैज्ञानिक ही बने; लेकिन एक अच्छा इंसान बनने के लिए एक वैज्ञानिक चित्त का होना तो बहुत ही जरूरी है। आप चाहे संगीतकार बने या खिलाड़ी, चिकित्सक बने या व्यापारी, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वैज्ञानिक बुद्धि का होना आवश्यक है। अतः यह अध्याय केवल उन बच्चों के लिए नहीं लिखा गया है, जो की बड़े होकर वैज्ञानिक बनना चाहते है। यह तो उन सभी बच्चों

के लिए है, जिन्हें एक वैज्ञानिक सोच का नागरिक बनना है। दुनियाँ के अनेकों वैज्ञानिकों और विचारकों के जीवन और कार्यों का अध्ययन करने के बाद हम पाते है कि इन सभी के जीवन में कुछ मूलभूत गुणों में विशेष समानता है। कुछ सिद्धांतो और नियमों ने प्रत्येक के जीवन पर गहरा असर डाला है। अतः उन प्रमुख गुणों को समेटकर मैंने इस अध्याय को तैयार किया है।

बचपन में रखे विज्ञान की नींव

बच्चों याद रखे, वैज्ञानिक बनने के लिए कोई आयु सीमा निश्चित नहीं है। अधिकतर महान वैज्ञानिकों ने अपने जीवन के प्रारंभिक वर्षों में ही अपनी खोजी प्रवृत्ति की नींव डाल ली थी। हमारा मस्तिष्क बचपन में अत्यंत ग्रहणशील और उन्नत रहता है। इस समय आप जो भी सीखते है, वह ज्ञान जीवन भर आपके साथ बना रहता है इसलिए अपने आप को वैज्ञानिक सोच देने की शुरुआत जल्दी ही करें। यह उम्र ऐसी होती है जहाँ आप पर घर परिवार की जिम्मेदारी का बोझ नहीं होता है, आपको अपने वक्त को इस तरह बिताना चाहिए कि आप हर दिन कुछ नया सीख सके, कुछ नया कर सके।

क्यों और कैसे का साथ कभी न छोड़े

बच्चों आप जब बहुत छोटे थे और अपने घुटनों पर चलते थे उस वक्त आप जो काम सबसे ज्यादा करते थे वो था हर नई चीज़ को घूरना, छूना यानि की समझने की कोशिश करना। और आज भी आपके दिमाग में चीजों को लेकर लाखों सवाल आते होंगे। आसमान नीला क्यों है? पंछी उड़ते कैसे है? बिजली क्यों चमकती है? इंद्रधनुष कैसे बनता है? जैसे अनेको सवाल। .. अक्सर आप इन्हें अपने मम्मी-पापा या टीचर से पूछतें है, लेकिन कई बार जब वे आपके इन सवालों से परेशान हो जाते है तो वे आप को चुप रहने के लिए कह देते है। उनकी

खीज स्वाभाविक है, क्योंकि इस संसार के सारे सवालों के जवाब किसी के पास नहीं है। लेकिन फिर भी आपको अपनी जिज्ञासाओं को मारने की जरूरत नहीं है।

सौभाग्य से आजकल हर शहर और क़स्बे में बाल-विज्ञान संस्थाओं की स्थापना हो रही है, विज्ञान के सवालों पर ढ़ेरों पुस्तकें मौजूद है और सबसे बड़ी जादू की छड़ी है - 'इन्टरनेट'। जी हाँ, यहाँ पलक झपकते ही आप अपने सवालों के ढ़ेरों जवाब ढूंढ सकते है। आप अपने सवाल किसी विज्ञान विषय के बड़े छात्रों से भी पूछ सकते है। तरीका जो भी हो, सवाल महत्वपूर्ण है।

वैज्ञानिक प्रतिभा का विकास करने की पहली शर्त है- जिज्ञासा वृत्ति का होना। एक बार नोबेल पुरस्कार विजेता भौतिक विज्ञानी आई.आई. राबी से उनके एक दोस्त ने पूछा- "आप अपने आस-पड़ोस के अन्य प्रवासी बच्चों की तरह डॉक्टर, वकील या व्यापारी बनने के बजाय वैज्ञानिक क्यों बने?" इस पर राबी ने बड़ा ही रोचक जवाब दिया। उन्होंने कहा- "मेरी माँ ने अनजाने में ही मुझे वैज्ञानिक बना दिया।

ब्रूकाइलिन में रहने वाली हर यहूदी माँ, स्कूल से लौटने वाले अपने बच्चे से पूछती थी, 'तो स्कूल में तुमने आज कुछ सीखा कि नहीं।' लेकिन मेरी माँ ऐसा नहीं करती थी। वह हमेशा एक अलग तरह का सवाल मुझसे पूछती थी- 'इज्जी, क्या आज तुमने अपनी कक्षा में कोई अच्छा सवाल पूछा?' दूसरी माताओं से उनके इस फर्क यानी अच्छे सवाल को महत्व देना, उनकी इस खासियत ने मुझे वैज्ञानिक बना दिया।"

पिटी पिटाई बातों से आगे बढ़े

ये दुनियाँ हर पल, हर दिन विकास कर रही है। लाखों साल पहले हमारे पूर्वज पत्थर रगड़ कर आगे जलाते थे और आज

हम माचिस की छोटी से डिबियाँ में उस आग को लेकर अपने साथ घूमते है। तब से लेकर अब तक दुनियाँ में हर पल ज्ञान का विकास हुआ है। इसलिए आपको यह समझना है कि जो भी तथ्य हमारे सामने आतें है, वे केवल इसलिए सही नहीं हो जाते क्योंकि उन्हें हमारे पूर्वजों ने कहा है। हज़ारों साल तक इंसान ये मानता रहा की दुनियाँ चपटी है। यही बात स्कूलों भी पढ़ाई जाती रही फिर एक दिन कोपरनिकस और गैलिलियो जैसे वैज्ञानिकों ने इस बात पर खोज की तो पाया- अरे धरती तो गोल है! अब आप ही सोचिये अगर वे भी पूर्वजों की बात को ही सही मानकर बैठ जाते तो क्या सत्य कभी किसी के सामने आता? अतः आपको अपने जीवन के प्रति खुली और वैज्ञानिक दृष्टि रखनी होगी, कोई भी बात को सिर्फ इसलिए मान लेना चाहिए क्योकि वो किसी बड़े आदमी ने, किसी धर्मग्रन्थ ने या किसी व्यक्ति विशेष ने कही है - वैज्ञानिक बुद्धि को विकसित नहीं होने देगा। हमें बड़ी बहादुरी से सही को सही और गलत को ग़लत स्वीकार करना होगा।

निडर और निर्भीक बने

वैज्ञानिक व्यक्तित्व का एक और महान गुण है- 'निडरता'। इतिहास गवाह है कि हज़ारो वैज्ञानिकों और सत्य के खोजियों ने अपने जीवन की परवाह किये बिना सत्य के साथ मरना पसंद किया। इटली के महान वैज्ञानिक ब्रूनो को मात्र इसलिए जिन्दा जला दिया गया क्योंकि उन्होंने उस समय से समाज में प्रचलित धारणा, कि - धरती सौर मंडल का केंद्र है और सूरज सहित बाकि ग्रह उसके चक्कर लगाते है, का विरोध किया। चाहे लिओनार्डो विन्ची हो या गैलिलियो, कोपरनिकस हो या न्यूटन सभी अपने सत्य पर अडिग रहे और आखिर में जीत उन्ही की हुई। आपको भी अपने जीवन में निर्भीक बनना सीखना होगा और सत्य के लिए चाहे कष्ट सहन करना पड़े उसी का साथ देना होगा।

प्रामाणिक विधियों का प्रयोग करे

कोई भी बात इसलिए सच नहीं होती कि वह किसी बड़े अख़बार में छपी है या इन्टरनेट पर किसी वेबसाइट में लिखी है। वैज्ञानिक रूप से किसी सत्य का पता लगाने के लिए आपको प्रामाणिक विधियों का सहारा लेना होगा। विज्ञान के अध्ययन में जिन विधियों का उपयोग सामूहिक रूप से अथवा आंशिक रूप से किया जाता है, वे इस प्रकार है।

१. अवलोकन(observation): किसी भी विषय या घटना का ध्यानपूर्वक अवलोकन करना ही वह पहला कदम है जो आप को सत्य के निकट लाता है। निरीक्षण का सही तरीका है, पहले अपने दिमाग में बसे सारे पुराने सिद्धांतों या पूर्वाग्रहों को निकाल दे और निष्पक्ष रूप से विषय का अवलोकन करे।

२. वर्णन (description): अगली सीधी है वर्णन, मतलब अवलोकन से प्राप्त हुई जानकारी को स्पष्ट रूप से बिना हेरफेर के लिखना। यहाँ आपको खुद की रूचि अरुचि को दूर कर निरपेक्ष भाव से उस विषय या घटना का वर्णन करना है। याद रहे यह वर्णन बहुत लंबा भी न हो और न ही बहुत छोटा।

३. कार्य-कारण-विवेचन (cause and effect): किसी भी घटना का होना या परिणाम का निकलना इसके पीछे कारण निश्चित रूप से जुड़ा होता है। बादलों का गरजना और वर्षा का होना, आग लगने पर धुँआ उठना ये सभी कार्य-कारण से जुड़े हुए है। अगर आप प्रकृति के रहस्यों को उद्घाटित करना चाहते है तो आपको कार्य-कारण के सम्बन्ध को समझना बेहद जरूरी है।

4. प्रयोगीकरण (experimentation): अब तक की प्रचलित सभी वैज्ञानिक विधियों में प्रयोगीकरण अर्थात स्वयं किसी तत्व के बारे में प्रयोग करके देखना सबसे परिणामदायी विधि है। आप इस विश्व में जितने भी महान अनुसंधान देखते हैं उन

सब के पीछे वैज्ञानिकों द्वारा किये गए अनेकों प्रयोग ही तो है। एक बात और जान लेना जरूरी है कि ये जरूरी नहीं की आपको अपने पहले या दूसरे ही प्रयोग में सफलता मिले। लेकिन निराश हुए बगैर अपने लक्ष्य तक पहुँचने के प्रयास करते रहना ही वैज्ञानिक-चित्त की पहचान है।

५. परिकल्पना (hypothesis): कई बार आप किसी सत्य तक पहुचने के लिए किसी प्रारंभिक विचार या कल्पना को अपनाते है। उदहारण के तौर पर अगर बर्फ़ के बारे में हम एक परिकल्पना लेकर चले की यह पानी के ही शीतल होकर ठोस होने का परिणाम है, तो इस परिकल्पना के आधार पर बर्फ़ को पिघलने के बाद पुनः पानी की तरल अवस्था में बदलना चाहिये। अगर ऐसा होता है तो हम यह मान सकते है की हमारी परिकल्पना सही है। ठीक इसी तरह आप भी परिकल्पना के सहारे अनेक सत्य और असत्यों का पता लगा सकते है।

६.आगमन (induction): एक ही समूह के पदार्थो और घटनाओं में अक्सर अनेक समानताएँ पाई जाती है, अतः एक चीज़ पर हो रही घटना और प्रभाव का निरीक्षण करके उसी समूह के अन्य तत्वों के बारे में अनुमान लगाया जा सकता है। उदाहरण के लिए बारूद के किसी बड़े ढ़ेर की ज्वलनशीलता का अनुमान लगाने के लिए उसकी थोड़े सी मात्रा अलग लेकर इसका अनुमान लगाया जा सकता है। अथवा एक मनुष्य की मृत्यु देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है मनुष्य एक मरणधर्मा प्राणी है।

७. निगमन(deduction): इस विधि में, किसी सत्य पाये गए निष्कर्ष के अनुसार समूह के अन्य तत्वों को भी उन्हीं गुणों का पालन करता हुआ माना जाता है। जैसे सभी मनुष्य मरणधर्मा है यह एक निष्कर्ष है, अमन एक मनुष्य है अतः उपरोक्त निष्कर्ष के अनुसार अमन भी एक मरणधर्मा है।

८. गणित और प्रतिरूप (mathematics and model): जिन चीजों का मापन या परिक्षण हमारी क्षमता से पर हों जैसे सौरमण्डल से ग्रहों का मापन वहाँ उनके मॉडल के प्रयोग की सहायता ली जाती है। गणित हमें तार्किक क्षमता देता है और किसी परिणाम के सटीक आकलन की सुविधा भी।

९. वैज्ञानिक दृष्टिकोण (scientific outlook): यह किसी भी अनुसंधान की मूलभूत आवश्यकता है कि आप अपने निजी दृष्टिकोण को दूर रखकर निष्पक्ष भाव से अपना शोध करे।

बच्चों आप सभी अपने जीवन की समस्याओं को इन वैज्ञानिक विधियों द्वारा हल करके की कोशिश कर सकते है। आशा है की आपको सफ़लता अवश्य प्राप्त होगी।

विज्ञान अड़ियल नहीं होता

विज्ञान के सम्बन्ध में एक बात सबसे अच्छी है की वह कभी अपने दावों और परिणामों को अन्तिम सत्य नहीं मानता। अपनी उपलब्धियों के बारे में वो सदैव यही मानता है कि उस समय तक प्राप्त जानकारियों और साधनों के आधार पर मिले हुए परिणाम यह है; लेकिन भविष्य में इस बारे में नयी खोज के लिए हमेशा स्थान रिक्त है। इसलिए आप देखेंगे की अगर विज्ञान में कोई नया वैज्ञानिक अपने पुराने वैज्ञानिक की खोजों को ग़लत साबित करता है तो यह क्रोध और अपमान का विषय नहीं बल्कि आदर और सम्मान का विषय माना जाता है। यही बात जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनानी चाहिए एवं जहाँ अहंकारपूर्ण अड़ियल दावें किये जाते है उन्हें अवैज्ञानिक ही मानना चाहिए।

प्रकृति का अध्ययन करे

एक कहावत है; 'इस दुनियाँ का सबसे बड़ा विज्ञान यह दुनियाँ खुद है'। बच्चों प्रकृति के अध्ययन का गुण लगभग सभी महान

वैज्ञानिकों में देखा जाता है। चाहे न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण गिरते हुए सेब से हो या राइट ब्रदर्स का पक्षियों के पँख लगाकर हवा में उडने का सपना हो क़ुदरत के क्रियाकलापों में ऐसे ऐसे महान रहस्य भरे पड़े है जिसे अगर आप अपनी वैज्ञानिक बुद्धि से देखेंगे तो ज्ञान के अनेकों भण्डार आपके सामने खुलते चले जायेगे।

ज्ञान को बांटे

अक्सर एक नई पीढ़ी का वैज्ञानिक अपने अनुसंधान के लिए अपने से पहले के वैज्ञानिकों के प्रयोग, अनुमानों और विधियों का सहारा लेता है और यह तभी संभव है जब आप मुक्त रूप से ज्ञान को बाँटने की कोशिश करे। याद रखे विज्ञान का उसूल है कि अनुसंधान की प्रक्रिया के कष्ट और संघर्ष आपके अपने हो सकते है लेकिन उसके परिणाम और उपलब्धियों पर सम्पूर्ण मानवता का अधिकार है। महान महिला वैज्ञानिक मैरी क्यूरी को याद करे जिन्होंने करोड़ो रूपये की दौलत को ठुकरा कर रेडियम बनाने की विधि को सारे विश्व के सामने ज़ाहिर कर दिया और आज सारा विश्व उनकी इस महान खोज से लाभ ले रहा है।

उत्साहित रहे

कई बार आपको अपनी ख़ोज में लग रहे समय को देखकर ये विचार आ सकता है कि मैं अपना समय बर्बाद तो नहीं कर रहा? लोग आपको सनकी और पागल कहकर आपकी हँसी भी उड़ा सकते है ऐसे में आपको स्वयं को निरुत्साहित नहीं करना है। याद रखे दुनियाँ ने तो जगदीश चन्द्र बसु की भी हँसी उड़ाई थी जब उन्होंने दुनियाँ के सामने कहा था कि पेड़-पौधों में आपकी-हमारी तरह जीवन और भावनाएँ होती है।

समाज के हित में अपना हित समझे

विज्ञान की शक्ति प्रचंड है, अगर यह ग़लत हाथों में पड़ जाये तो सारे सँसार के विनाश का कारण बन सकती है। समृद्धि और सुख के अंबारों की जगह, विध्वंस और दु:खों का सैलाब भी ला सकती है। महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आंइस्टीन को अपने अंतिम समय तक यह बात कचोटती रही कि उन्होंने परमाणु के प्रयोग की सलाह अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति को क्यों दी। डाइनामाईट का आविष्कार करने वाले महान वैज्ञानिक अल्फ्रेड नोबेल भी अपनी खोज के दुरूपयोग से सदा दुखी ही रहे। अतः आपको बचपन से ही इस बात का निश्चय करना है अपनी खोज का दुरूपयोग रोकने के हर संभव प्रयत्न आप करते रहेंगे और समाज के हित में ही अपना हित समझेंगे।

बच्चों २१वी सदी विज्ञान की सदी है, मनुष्यता के सामने प्रकृति के असंतुलन और प्रदुषण की गंभीर समस्याएँ खड़ी है। ऐसे में आप लोग मानव-मानव को विज्ञान के एक सूत्र में बाँध कर अपने देश और विश्व को एक बार फिर एक शानदार और सुन्दर ग्रह बना सकते है। इस पुस्तक को एक बार नहीं, बार बार पढ़े और इन विचारों को अपने जीवन में उतारने का प्रयास करे। हम आपके उज्वल भविष्य की कामना करते है।

मुझे आपकी प्रतिक्रियाएँ और सुझाव rishiaacharya82@gmail.com पर ईमेल करे।

Image Source: Wikimedia